आक्रान्त हिमालय

• •

एक अध्ययन

एस० रामचन्द्र
अर्थशास्त्र विभाग
काशी विद्यापीठ
वाराणसी

राष्ट्रपति भवन
नयी दिल्ली–४.

Rastra Pati Bhavan
New Delhi-4.
May 7, 1963

I hope the book willbe widely read.

With the best wishes.

Yours Sincerely

(S. Radhakrishnan)

राज्य भवन
जयपुर
दिनांक दिसम्बर ३०, १९६२

पुस्तक बहुत ही समयोपयोगी है, इसमें सन्देह नहीं है।

हितू

(सम्पूर्णानन्द)

रामचन्द्र सिंह
५५, मिश्र पोखरा
वाराणसी

भारतीय संस्कृति, सभ्यता, स्वतंत्रता एवं एकता

के प्रतीक महामहिम राष्ट्रपति

डा० एस० राधाकृष्णन् को

सादर समर्पित ।

काशीविद्यापीठ के उपकुलपति का छात्र एवं छात्राओंके नाम संदेश—

"काशी विद्यापीठ के संस्थापक, आचार्यों एवं अध्यापकों और छात्रों ने भारतीय स्वतन्त्रता की लड़ाई में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। आज भी संगठन एवं सरकार में काशी विद्यापीठ के छात्र ऊँचे जगहों से राष्ट्र की सेवा कर रहे हैं। वर्तमान छात्र एवं छात्राओं को स्वतन्त्रता के रक्षार्थ संस्था के उज्जवल गौरव के अनुसार कार्य करना चाहिये।"

[दिनांक—२३-१०-६२]

विषय-सूची

अनुक्रमांक | पृष्ठ संख्या

अनुक्रमांक	पृष्ठ संख्या
भूमिका	—
१—ऐतिहासिक प्रक्रिया : संप्रभु राष्ट्रों का जमाव	१
२—आदर्शों एवं आस्थाओं का संघर्ष	८
३—चीनियों का शब्द कोष में घुसपैठ	१८
४—चीनी आक्रमण का आर्थिक प्रभाव	२५
५—हिमालय व नदी घाटी योजनायें	२८
६—हिमालय का सामारिक पहलू	३४
७—अणु-अस्त्र भंडार गृह व हिमालय	४४
८—विश्व की रणनीति में हिमालय का स्थान	४८
९—भारत की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ	६०
१०—विश्व स्थिति एवं रूस-चीन संबंध	८०
११—नेहरू, हिमालय और इतिहास	१०५
१२—हिमालय व संसदीय लोकतन्त्र	१११
१३—नेहरू का वैज्ञानिक अध्यात्मवाद	१२२
१४—इतिहास का मोड़ व कोलम्बो प्रस्ताव	१२६
१५—भारत-चीन समीक्षा	१३४
१६—हिमालय की खोज	१४०
१७—सुदुर पूर्व की अमेरिकी परराष्ट्र नीति	१४७
१८—गांधी विचार एवं राष्ट्रीय सुरक्षा	१५६

प्राक्कथन

"आक्रान्त हिमालय : एक अध्ययन" नामक पुस्तक मेरी प्रथम रचना है। कई वर्षों के सतत चिंतन व अध्ययन के पश्चात् इसे इस स्वरूप में ला सका हूँ। सर्वप्रथम मैंने महामहिम डा० सम्पूर्णानन्द जी के एक लेख से प्रेरणा प्राप्त किया था। सन् १९५९ ई० में डाक्टर साहब ने रेडफ्लैग में प्रकाशित एक लेख का उत्तर दिया था। रेडफ्लैग में चीन स्थित किसी साम्यवादी राजदूत ने भारत की तथा जनप्रिय प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की नीतियों के विपक्ष में लेख लिखा था। उक्त सभी आरोपों का उत्तर डाक्टर साहब ने अपने लेख में दिया था। उक्त लेख के पढ़ने के पश्चात् मैंने भारत-चीन सम्बन्धों पर अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। मुझे इस विषय की पुस्तकों में "इनसाइड दी लैंड्स आफ लामाज" एवं विन्सी राइट की पुस्तक "स्टडी आफ वार" सर्वाधिक प्रेरणाप्रद महसूस हुयी। अन्य प्रयोग की गयी पुस्तकों का यथास्थान वर्णन कर दिया गया है। पुस्तकों के अलावा अपनी विचारधारा की प्रमाणिकता एवं अभिवृद्धि के लिये मैंने इस विषय में वार्तालाप की शृंखला को कायम किया। भूगर्भ शास्त्री, इतिहास विद, राजनीतिज्ञ एवं प्रशासक तथा प्राध्यापक और छात्र सभी स्तर के साथियों से परामर्श चलता रहा है। सन् १९६० ई० को माननीय दलाईलामा का भाषण सर्वसेवा संघ में सुनने को प्राप्त हुआ। तब तक मेरी विचारधारा एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। दिनांक २६–२–६० ई० को माननीय डा० सम्पूर्णानन्द जी, मुख्य मंत्री, उत्तर-प्रदेश के पते से "भारत चीन सीमा सम्बन्धी व्यक्तिगत दृष्टिकोण" नामक पत्र को प्रेषित किया। उक्त पत्र में मैंने वैज्ञानिक परिस्थितियों का उल्लेख किया था और स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था कि क्यों चीन ने तिब्बत हड़प लिया तथा भारतीय भूभाग को दबा बैठा है? मेरी समझ से हिमालय तथा तिब्बत स्थिति क्षेत्रों में अणु-अस्त्र रखाव गृह प्रयोग भूमि की सम्भावना से चीन ने कई कारणों में से इसे भी अपनाया है। जैसे आधुनिक सभ्यता में शहरों में कसाई गृह होते हैं वैसे ही आधुनिक संसार में हर राष्ट्र अपने पास अणु-परिक्षण भूमि रखता है। चीन पूर्वी तरफ अमेरिका एवं कोमितांग सरकार से घिरा है। जनवादी चीन के साहित्य संकेत दे रहे थे कि चीनी युवक हिमालयवर्ती जल स्रोतों एवं झरनों का अध्ययन करते हैं। इस कारण उक्त

पत्र में मैंने भारतीय नदियों के घाटियों एवं बंधों के ऊपर आसन्न संकट को प्रगट किया था। इसके अलावा तिब्बत के भूगर्भिक अध्ययन के आधार पर उसके सामरिक महत्व एवं अणु-अस्त्रों के केन्द्र एवं क्षेपास्त्र पीठिका का वर्णन किया था। पत्र प्रेषण के प्रयास के बाद मैंने अपने कर्तव्यों को इति श्री समझ लिया। परन्तु, सौभाग्य से मेरी भेंट श्री दयाशंकरलाल जी से हो गयी। आप इस वक्त उत्तर-प्रदेश विभाग में प्रादेशिक परिवहन अधिकारी हैं। उस समय वाराणसी में हो थे। श्री लाल साहब के प्रोत्साहन एवं बुद्धिमत्तापूर्ण सुझावों से मैंने अपने विचारों को लिपीबद्ध करना शुरू किया। श्री लाल साहब के ही प्रोत्साहन पर यह पुस्तक संकलित हो सकी है। मेरे राष्ट्रीय विचारों के विकास में श्री ललित मोहन भाटिया आई० ए० एस०, श्री उदय प्रताप सिंह एम० ए० का बहुत सहयोग रहा है। प्रथम अध्याय में मैंने आक्रमण के कारणों का पृष्ठभूमि कुरेदा है। मेरी समझ में टकराव की यह अवश्यम्भावी बेला था एवं है। क्योंकि आज एशिया में संप्रभु राष्ट्रों का मिलन हो रहा है। इसमें भी उल्लेख्य है कि विपरीत आदर्शों के राष्ट्र एक दूसरे से सट गये हैं। टकराव के पश्चात् चीनी महत्वकांक्षा एवं तथाकथित आदर्श और बिश्वासघात घुस आये हैं। दूसरे अध्याय में मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि चीनी मत के अनुसार मनुष्य कल्पित आदर्शों के लिये सिर्फ ईंधन है। यह आक्रमण भारत के प्रत्येक व्यक्ति पर है। तीसरे अध्याय में मैंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि स्वतन्त्र एवं मित्र देशों के वांङ्मय में भी चीनी आक्रमण हो चुका है। यह भूमि के आक्रमण से ज्यादा खतरनाक है। आगे के अध्यायों में हिमालय के आर्थिक एवं सामरिक उपयोगिता का वर्णन किया है। इसी के सन्दर्भमें इस मत की स्थापना को किया है कि "पिछला संसार नदी घाटियों की सभ्यताओं से जाना जाता था, आगे का संसार नदी घाटी योजनाओं से जाना जायगा। अणु-अस्त्रों के आविष्कार ने जो परिवर्तन पैदा किया है उसके संदर्भ में विश्वस्थिति को चित्रित किया है। विश्व व्यापार में महाजनवाद यानी पूंजी के निर्यात की पद्धतियों का वर्णन भी उसी अध्याय में है। प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल की नीतियों एवं कृतित्व के वर्णन का भी लघु प्रयास किया गया है। अन्त के अध्यायों में हिमालय की अनिवार्यता तथा गांधीवाद के प्रति व्यावहारिक आस्था के प्रति कुछ वर्णन है। वास्तव में अभी हमलोग संकट के इतने निकट हैं कि इसका निष्पक्ष मूल्यांकन सम्भव नहीं है। तथापि घटना विकास के साथ पूर्ण निष्पक्ष, एवं बैज्ञानिक ढंग से व्यवहार करने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय संकट में जागृति के लिये ही इस पुस्तक को रचना का ध्येय है। यह इतिहास के नये मोड़ का संक्रमण काल है। शस्त्र एवं

शास्त्र दोनों से आक्रमण हो रहा है। एशिया में दो जीवन प्रणालियों के अस्तित्व का संघर्ष है। माओ ने कहा है कि सूर्य सदा चीन से ही उगता है। माओ के इस भाषण के दो वर्ष पहले ही नेहरू ने कहा था कि एशिया में अब कभी न डूबने वाला सूर्य उग आया है। परन्तु, अब पूर्व व सुदुर पूर्व की हो लड़ाई है। अंधकार व प्रकाश की लड़ाई है। भारतीय जनता की जानकारी के लिये एवं शहीदों के बलिदान को कामयाब बनाने के संघर्ष में ही इस पुस्तक का ध्येय छिपा है।

मैं अपने श्रद्धेय गुरुजन आचार्य श्री भगवती प्रसाद पांथरी, प्रो० श्री दूधनाथ चतुर्वेदी (अध्यक्ष, अर्थशास्त्र-विभाग) प्रो०रामकुमार चौबेजी, प्रो० कृष्णनाथ शर्मा, प्रो० पुरुषोत्तम पांडेय एवं प्रो० व्रजेन्द्र किशोर अग्रवाल के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ। प्रो० श्री दूधनाथ चतुर्वेदीजी ने मुझे अंधकारसे प्रकाश की तरफ ले जाने की कृपा की है। विद्यापीठ के सम्पूर्ण छात्रों एवं छात्राओं के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। जिस व्यवहारिक ज्ञान को मुझे सुलभ कराया वह अन्यत्र सुलभ नहीं था। इसके साथ ही मुझे छात्रों का स्नेह व विश्वास पाने का सौभाग्य है। इसी कारण मैं भाई दयाशंकर मिश्र एवं श्री फौजदार त्यागी का विशेष आभारी हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर डा० कैलाशनाथ शर्मा, भाई विमलाचरण पांडेयजी, श्री रामनरेश सिंह तथा श्री उमाकांत त्रिवेदी (इलाहाबाद युनिवर्सिटी) से काफी सहयोग प्राप्त हुआ। श्री लालजी मिश्र, श्री रामजी आर्य, कमला प्रसाद सिंह, श्रीरामविलास पांडेयजी, श्रीलल्लन सिंह, श्री बेचू चौबे, श्री कल्पनाथ सिंह व दिनेश सिंह, श्री गयाप्रसाद यादव, श्री रामकिशुन सिंह, श्री विजयबहादुर सिंह, श्री वंशरोपन सिंह व राणाप्रताप सिंह, श्री गिरिजा शंकर सिंह, श्री वी० बी० सिंह एवं श्री सुरेशचन्द्र मेहरोत्रा व श्री कालिकाशरण दूबे तथा श्री बाबूलाल मिश्र जी का स्नेह व सहयोग रहा है। इन सभी साथियों के प्रति मैं आभारी हूँ। क्योंकि इन्हीं साथियों के संपर्क एवं स्नेह ने मुझे लिखने एवं सोचने की शक्ति को प्रदान किया। अपने परिवार एवं श्री संकठा सिंह जी का मुख्य रूप से आभारी हूँ। अंत में प्रो० श्री दूधनाथ चतुर्वेदी के शब्दों में साधु एवं साधुता की मूर्ति आचार्य बीरबल सिंह जी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। सर्वोपरि प्रेरणा मुझे युग पुरुष श्री जवाहरलाल जी से प्राप्त हुयी। युगपुरुष के अविस्मरणीय साक्षात्कार ने मेरे सोचने की पद्धति को मार्गदर्शन प्रदान किया। मैं पण्डित जी का ऋणी हूँ। एशिया प्रेस एवं विश्ववाणी प्रेस, वाराणसी के प्रति विशेष आभारी हूँ। इन संस्थाओं के कर्मचारियों तथा मालिकों के अकथ परिश्रम से पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। मुद्रण तथा विषय आदि की त्रुटि के

लिये पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। प्रस्तुत विषय पर पाठकों के सुझाव के लिये कृतज्ञ रहूँगा।

१—५५ मिश्रपोखरा,
वाराणसी।

२—ग्राम-कैलावर,
पत्रालय-मथेला,
वाराणसी।

एस० रामचन्द्र

ऐतिहासिक प्रक्रिया : संप्रभु राष्ट्रों का जमाव

हिमालय की धुरी पर इतिहास में प्रथम बार १६४७ से १६५० तक का काल संप्रभु एवं शक्तिशाली राष्ट्रों के मिलन का क्रांतिकारी एवं एशिया के भाग्य का नियामक काल रहा है। इन दिनों उन घटनाओं का सृजन हुआ जिससे आगामी इतिहास प्रतिध्वनित होगा। ब्रिटिश ताज से उन्मुक्त होकर स्वतत्रता की देवी भारत में आकर स्वतंत्र रहकर भी विभाजित हो गयी। भारत व पाकिस्तान का अस्तित्व १५ अगस्त १६४७ से प्रारम्भ हो गया। सितम्बर १६४६ को जनवादी चीन ने अपने संप्रभुता के अलावा क्रांति द्वारा शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में क्रमबद्ध हुआ। इसकी धधक हिमालय की चोटियों तक पहुँची। ४ जनवरी १६४८ को वर्मा भी अपनी दासता तोड़ चुका था। एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में एशिया कुल में अपने विकास को प्राप्त करने की सहज चेष्टावश हिमालय को इसने अपनी सीमा के रूप में पाया। उस सीमा को ही इसने सत्य माना जिसे इतिहास परम्परा, व प्रकृति ने तय किया था। अफगानिस्तान अपने अतीत से स्वतन्त्रता को कमोवेशरुपमें अपने वर्तमान तक रखा है। दो लाख सत्तर हजार वर्गमील का यह पहाड़ी मुसलिम राज्य हिमालय का सर्वदा से अक्षुण्य संपर्की रहा है। इस क्षेत्र की दो महत्वपूर्ण परिस्थितियाँ एवं घटनायें हैं। पहली परिस्थिति इसके भौगोलिक शक्ल से सम्बन्धित है। ब्रिटिश भारत व रूस के बीच में इस राज्य के पड़ने से इसका इतिहास ब्रिटिश भारत की नीति एवं रूस की नीतियों से प्रभावित होता रहा है। इसीकारण रूस के अतीत के संभाबित आक्रमणों से बचने के लिये

ब्रिटिश भारत सरकार ने कई सैनिक अभियानों का सफल व असफल आयोजन अफगानिस्तान तक किया। दर्रा खैबर की घटना एवं सीमा पर सैनिक आयोजन ब्रिटिश नीति के संकेत रहे हैं। १९४७ से पूर्व ही राष्ट्रपति ट्रूमन ने द्वितीय महायुद्ध के दौरान तथा उसके अंतके समय अफगानिस्तान को सैनिक संधि के अन्तर्गत रखना चाहा। अमेरिकी व रूसी प्रस्तावों तथा अपनी ऐतिहासिक अदम्य स्वतन्त्रता के कारण अमीर ने तटस्थ रहना पसन्द किया। यह आधुनिक अफगानिस्तान की महत्वपूर्ण प्रथम घटना है। दूसरी महत्वपूर्ण घटना पख्तूनिस्तान का जन आन्दोलन है। यद्यपि यह घटना पाकिस्तान से सम्बन्धित है तथापि हिमालय पर अफगानिस्तान व पाकिस्तान के बीच हलचल के रूप में इसका स्थान है। यह हलचल एक छोर से हिमालय के दूसरे छोर तक दृष्टिगत है।

नेपाल अफगानिस्तान के सादृश्य शाही सत्ता युक्त पहाड़ी राज्य है। सन् १९५० ई० में नेपाल के प्रधान मन्त्री, जो वस्तुतः शक्तिशाली व सेनाध्यक्ष होते थे; के खिलाफ जन विप्लव हुआ। नेपाल नरेश ने १०४ वर्ष बाद १९५० में अपने वास्तविक अधिकारों को पाया। ३१ जुलाई १९५० को भारत ने नेपाल के सम्बन्धों को पहले से अधिक मित्रोचित कर हिमालय की गोद में बसे इस राज्य को नवजीवन प्रदान किया। कालांतर १९५५ में नेपाल अपनी संप्रभुता के अनुसार राष्ट्र संघ में भी स्थान पा गया। इस प्रकार यह प्राचीन राज्य हिममँडित शिखरों से घिरे हुये रूप में भी विश्व का ध्यान आकृष्ट करने लगा। हिमालय की धुरी पर इस राज्य के अन्दर कई विश्व परिस्थितियाँ उत्पन्न होना शुरू हुई। अमेरीकी सहायता, भारतीय सहायता तथा चीनी सहायता, जो आर्थिक घटकों के रूप में हैं; नेपाल को प्राप्त होने लगी। नेपाल आधुनिक राष्ट्रके रूपमें बढ़ने लगा तथा योजनाओं को प्राथमिकता दिया। परन्तु नेपाल की आन्तरिक [illegible] अभी भी उत्तरोत्तर गतिशील है। संसद विघटन तथा राष्ट्रीय सुरक्षा व शाही ताज की स्थिति आन्दोलित परिस्थितियों में देश के संमुख

हैं। ये परिस्थितियाँ इतिहास का निर्माण कर रही हैं। आर्थिक तैयारियों व माँगों तथा राजनीतिक व्यवस्थायों व माँगों के दबाव से नेपाल गुजर रहा है। तिब्बत पतन से बाहरी दबाव भी आ पड़ा है। इन परिस्थितियों में नेपाल का अपना विशेष भौगोलिक स्थान है। उत्तर व उत्तर पूर्व में तिब्बत व चीन तथा पूर्व में सिक्किम है। पश्चिम व दक्षिण में भारत है। नेपाल जो सिक्किम, भूटान, तिब्बत सरीखे राज्यों व क्षेत्रों तथा भारत समान मित्रों से घिरे रहने के कारण वस्तुतः १९५० तक विश्व का सर्वाधिक सुरक्षित राज्य रहा है। वही आज तिब्बत पतन से एशिया के दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच आ गया। इस प्रकार इस राज्य ने सर्वाधिक उत्तरदायित्वों के बीच अपने को पाया। विश्व का कोई भी राष्ट्र ऐसी विषम परिस्थिति में नही है। सिक्किम भी एक हिमालयवर्ती पहाड़ी भारत संरक्षित राज्य है। २७४४ वर्गमील का यह क्षेत्र बहुत ही सैनिक महत्व का स्थान है। यहाँ के बौद्ध मत के निवासी तथा राजा इस पहलू पर सतर्क हैं कि हिमालय की धधक जिसे चीन ने पैदा किया है, किस प्रकार रोकी जाय। ५ दिसम्बर १९५० को भारत की सिक्किम के साथ संधि हुई। इस संधि में सिक्किम एक संरक्षित राज्य के रूप में भारतीय गणराज्य का साथी रहेगा सिक्किम की रक्षा से आसाम राज्य की रक्षा निर्भर है। क्योंकि सिलिगुड़ी तक स्थल सेना का प्रवेश चीनी सिक्किम की राह से कर सकेगें।

इसके बाद हिमालय की चोटियों व तराई में हलचल की लहर बढ़ती हुई पाते हैं। भूटान का अर्धस्वतन्त्रराज्य अपने अट्ठारह हजार वर्ग मील के क्षेत्र में आज चीनी सेना के दबाव के पास है। इस क्षेत्र की जनता व शासक अपने स्वत्व के साथ कटिबद्ध हैं कि पीले संकट का सामना इस ऐतिहासिक घड़ी में डटकर किया जायगा। भूटान के लोग समझ रहे हैं कि चीनी मुक्ति का अर्थ सर्वदा के लिए स्वतन्त्रता, सभ्यता व स्वत्व से मुक्त होना है। चीन ने वर्मा राज्य के कचिन व शान प्रान्त के

लिये पाठकों से क्षमा चाहता हूं। प्रस्तुत विषय पर पाठकों के सुझाव के लिये कृतज्ञ रहूँगा।

१—५५ मिश्रपोखरा,
वाराणसी।

२—ग्राम-कैलावर,
पत्रालय-मथेला,
वाराणसी।

एस० रामचन्द्र

ऐतिहासिक प्रक्रिया : संप्रभु राष्ट्रों का जमाव

हिमालय की धुरी पर इतिहास में प्रथम बार १६४७ से १६५० तक का काल संप्रभु एवं शक्तिशाली राष्ट्रों के मिलन का क्रांतिकारी एवं एशिया के भाग्य का नियामक काल रहा है। इन दिनों उन घटनायों का सृजन हुआ जिससे आगामी इतिहास प्रतिध्वनित होगा। ब्रिटिश ताज से उन्मुक्त होकर स्वतत्रता की देवी भारत में आकर स्वतंत्र रहकर भी विभाजित हो गयी। भारत व पाकिस्तान का अस्तित्व १५ अगस्त १६४७ से प्रारम्भ हो गया। सितम्बर १६४६ को जनवादी चीन ने अपने संप्रभुता के अलावा क्रांति द्वारा शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में क्रमबद्ध हुआ। इसकी धधक हिमालय की चोटियों तक पहुँची। ४ जनवरी १६४८ को वर्मा भी अपनी दासता तोड़ चुका था। एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में एशिया कुल में अपने विकास को प्राप्त करने की सहज चेष्टावश हिमालय को इसने अपनी सीमा के रूप में पाया। उस सीमा को ही इसने सत्य माना जिसे इतिहास परम्परा, व प्रकृति ने तय किया था। अफगानिस्तान अपने अतीत से स्वतन्त्रता को कमोवेशरुपमें अपने वर्तमान तक रखा है। दो लाख सत्तर हजार वर्गमील का यह पहाड़ी मुसलिम राज्य हिमालय का सर्वदा से अक्षुण्य संपर्की रहा है। इस क्षेत्र की दो महत्वपूर्ण परिस्थितियाँ एवं घटनायें हैं। पहली परिस्थिति इसके भौगोलिक शक्ल से सम्बन्धित है। ब्रिटिश भारत व रूस के बीच में इस राज्य के पड़ने से इसका इतिहास ब्रिटिश भारत की नीति एवं रूस की नीतियों से प्रभावित होता रहा है। इसीकारण रूस के अतीत के संभावित आक्रमणों से बचने के लिये

ब्रिटिश भारत सरकार ने कई सैनिक अभियानों का सफल व असफल आयोजन अफगानिस्तान तक किया। दर्रा खैबर की घटना एवं सीमा पर सैनिक आयोजन ब्रिटिश नीति के संकेत रहे हैं। १९४७ से पूर्व ही राष्ट्रपति ट्रूमन ने द्वितीय महायुद्ध के दौरान तथा उसके अंतके समय अफगानिस्तान को सैनिक संधि के अन्तर्गत रखना चाहा। अमेरिकी व रूसी प्रस्तावों तथा अपनी ऐतिहासिक अदम्य स्वतन्त्रता के कारण अमीर ने तटस्थ रहना पसन्द किया। यह आधुनिक अफगानिस्तान की महत्वपूर्ण प्रथम घटना है। दूसरी महत्वपूर्ण घटना पख्तूनिस्तान का जन आन्दोलन है। यद्यपि यह घटना पाकिस्तान से सम्बन्धित है तथापि हिमालय पर अफगानिस्तान व पाकिस्तान के बीच हलचल के रूप में इसका स्थान है। यह हलचल एक छोर से हिमालय के दूसरे छोर तक दृष्टिगत है।

नेपाल अफगानिस्तान के सदृश्य शाही सत्ता युक्त पहाड़ी राज्य है। सन् १९५० ई० में नेपाल के प्रधान मन्त्री, जो वस्तुतः शक्तिशाली व सेनाध्यक्ष होते थे; के खिलाफ जन विप्लव हुआ। नेपाल नरेश ने १०४ वर्ष बाद १९५० में अपने वास्तविक अधिकारों को पाया। ३१ जुलाई १९५० को भारत ने नेपाल के सम्बन्धों को पहले से अधिक मित्रोचित कर हिमालय की गोद में बसे इस राज्य को नवजीवन प्रदान किया। कालांतर १९५५ में नेपाल अपनी संप्रभुता के अनुसार राष्ट्र संघ में भी स्थान पा गया। इस प्रकार यह प्राचीन राज्य हिममँडित शिखरों से घिरे हुये रूप में भी विश्व का ध्यान आकृष्ट करने लगा। हिमालय की धुरी पर इस राज्य के अन्दर कई विश्व परिस्थितियाँ उत्पन्न होना शुरू हुई। अमेरीकी सहायता, भारतीय सहायता तथा चीनी सहायता, जो आर्थिक घटकों के रूप में हैं; नेपाल को प्राप्त होने लगी। नेपाल आधुनिक राष्ट्रके रूपमें बढ़ने लगा तथा योजनायों को प्राथमिकता दिया। परन्तु नेपाल की आन्तरिक कशमकश अभी भी उत्तरोत्तर गतिशील है। संसद विघटन तथा राष्ट्रीय सुरक्षा व शाही ताज की स्थिति आन्दोलित परिस्थितियों में देश के संमुख

हैं। ये परिस्थितियाँ इतिहास का निर्माण कर रही हैं। आर्थिक तैयारियों व माँगों तथा राजनीतिक व्यवस्थायों व माँगों के दबाव से नेपाल गुजर रहा है। तिब्बत पतन से बाहरी दबाव भी आ पड़ा है। इन परिस्थितियों में नेपाल का अपना विशेष भौगोलिक स्थान है। उत्तर व उत्तर पूर्व में तिब्बत व चीन तथा पूर्व में सिक्किम है। पश्चिम व दक्षिण में भारत है। नेपाल जो सिक्किम, भूटान, तिब्बत सरीखे राज्यों व क्षेत्रों तथा भारत समान मित्रों से घिरे रहने के कारण वस्तुतः १९५० तक विश्व का सर्वाधिक सुरक्षित राज्य रहा है। वही आज तिब्बत पतन से एशिया के दो शक्तिशाली राष्ट्रों के बीच आ गया। इस प्रकार इस राज्य ने सर्वाधिक उतरदायित्वों के बीच अपने को पाया। विश्व का कोई भी राष्ट्र ऐसी विषम परिस्थिति में नही है। सिक्किम भी एक हिमालयवर्ती पहाड़ी भारत संरक्षित राज्य है। २७४४ वर्गमील का यह क्षेत्र बहुत ही सैनिक महत्व का स्थान है। यहाँ के बौद्ध मत के निवासी तथा राजा इस पहलू पर सतर्क हैं कि हिमालय की धधक जिसे चीन ने पैदा किया है, किस प्रकार रोकी जांय। ५ दिसम्बर १९५० को भारत की सिक्किम के साथ संधि हुई। इस संधि में सिक्किम एक संरक्षित राज्य के रूप में भारतीय गणराज्य का साथी रहेगा सिक्किम की रक्षा से आसाम राज्य की रक्षा निर्भर है। क्योंकि सिलिगुड़ी तक स्थल सेना का प्रवेश चीनी सिक्किम की राह से कर सकेगें।

इसके बाद हिमालय की चोटियों व तराई में हलचल की लहर बढ़ती हुई पाते हैं। भूटान का अर्धस्वतन्त्रराज्य अपने अट्ठारह हजार वर्ग मील के क्षेत्र में आज चीनी सेना के दबाव के पास है। इस क्षेत्र की जनता व शासक अपने स्वत्व के साथ कटिबद्ध हैं कि पीले संकट का सामना इस ऐतिहासिक घड़ी में डटकर किया जायगा। भूटान के लोग समझ रहे हैं कि चीनी मुक्ति का अर्थ सर्वदा के लिए स्वतन्त्रता, सभ्यता व स्वत्व से मुक्त होना है। चीन ने वर्मा राज्य के कचिन व शान प्रान्त के

हिस्सों को उक्त नकशे में प्रकट किया जिसमें चीन अपने प्रान्तों के साथ साथ दूसरे मुल्कों का भी हिस्सा प्रकाशित किया है। वर्मा की आन्तरिक स्थिति एवं उसकी अपनी भौगोलिक हालत ने कमोवेश रूप में चीन के अपने मतभेद को समाप्त कर देना उचित समझा। ब्रिटिश व चीन सरकार के १८९७ ई० के सीमा सम्मेलन व १९४१ के समझौते के आधार पर कुछ मामूली फेरफार के बाद सीमा समस्या वर्मा व चीन की शान्त हो गयी। विशेष उल्लेख्य है कि चीन ने यहाँ पर जल सिद्धान्त व परम्परा के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय सीमा को स्वीकार किया। इस प्रकार का व्यवहार चीन ने नेपाल के भी साथ किया है। दोनों देशों की सीमायें चिन्हित की गयीं एवं खम्भों के अधार पर इनका निर्धारण इस वर्ष हुआ। इन सभी प्रसंगों में हलचल की लहर जो १९४७-५० से उठी है, वह गतिमान ही है। इस हलचल में ऐतिहासिक घटना तिब्बत की है। इस एक घटना से आज इतनी सक्रान्ति है। ३० लाख जनसंख्या एवं ४६३००० वर्गमील का यह क्षेत्र विश्वछत के नाम से प्रसिद्ध है। दुनियाँ का सर्वोच्च पठार एवं अपने ढंग का लामा राज्य इसकी विशेषता है एवं थी। पश्चिमी जगत दलाई लामा को "गाड किंग" से सम्बोधित करते थे। इस राज्य में ७० प्रतिशत भारतीय रीति-रिवाज के अनुसार जनसंख्या थी। शेष ३० प्रतिशत चीनी ढंग की आवादी थी।

१८वीं शती में चीनीयों ने तिब्बत पर आक्रमण किया और अपने आधीन तिब्बत को रखने का प्रयत्न किया। परन्तु, खम्पाओं के अदम्य स्वातंत्र प्रेम के कारण चीन अपने मनोनुकूल परिस्थिति तिब्बत में न ला सका। १९१० में चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया। दलाईलामा को भारत शरणार्थी रूपमें आना पड़ा। परन्तु, ब्रिटिश भारत के दबाव व कूटनीति ने चीनियों के मनसूवे विफल कर दिये। १९१२ ई० में दलाई लामा तिब्बत को वापस उसी हैसियत से लौट गये। इसके बाद ब्रिटिश भारत ने तिब्बत पर अपनी निगरानी रखना शुरु कर दिया। ब्रिटिश भारत

सरकार ने चीन को १६०६ की संधि जो ब्रिटिश सरकार व चीन सरकार के बीच हुई थी, उसका स्मरण कराया। १३ जनवरी १६१३ ई० को दलाई लामा ने तिब्बत की स्वतंत्रता की घोषणा किया। मई १६१३ में ब्रिटिश भारत सरकार ने शिमला में तिब्बत चीन के साथ "त्रिदल सम्मेलन" आयोजित किया। उक्त सम्मेलन ने चीन को तिब्बत में मिशन रखने का अधिकार दिया और तिब्बत पर चीन की सांकेतिक वरीष्ठता को स्वीकार किया। इसके साथ ही तिब्बत के आन्तरिक मामलों में पूर्ण छूट की व्यवस्था को स्वीकार किया गया। "त्रिदल सम्मेलन" का आयोजन एवं १८५६ ई० की तिब्बत-नेपाल सन्धि इस बात के प्रमाण हैं कि तिब्बत स्वतन्त्र राष्ट्र रहा है। इसी तथ्य का निरूपण अन्तर्राष्ट्रीय न्याय विद् आयोग ने भी किया है। चीन के न तो कभी सैनिक तिब्बत में थे न नागरिक व न्याय प्रशासन के अधिकारी। चीन ने तिब्बत को "चीन-जापान" युद्ध में खींचना चाहा। परन्तु, तिब्बत तटस्थ ही रहा। यह स्थिति १६१४ से पहली जनवरी १६५० तक कायम रही। परन्तु, १६४६ ई० में चीन में जनवादी गणराज्य का उदय हुआ। उस वक्त शासन का उद्घाटन करते हुये अध्यक्ष श्री माओ-त्से-तुंग ने घोषणा किया कि "चीन के सभी सीनागत प्रदेश स्वतन्त्र किये जायँगे"। इस नीतिमूलक वक्तव्य का आधार वैसे राज्य की कलपना है जैसा कि सोवियत सरकार ने खड़ा किया है। सोवियत संघ १५ राष्ट्रों का संघात्मक राज्य है। इसी आधार पर चीन ने कहा कि तिब्बत भी चीनी जनवादी राज्य के अन्तर्गत ५ राष्ट्रोंयुक्त भूमि का ही अंग है।

सन् १६५० में चीन ने त्वारत सैनिक अभियान कर अपनी मनोकामना के अनुकूल हिमालय की शाखायों पर अधिकारहेतु तिब्बत तक चढ़ आया।

चित्राल व गिलगित काश्मीर में सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुये आक्रमण व प्रतिरक्षा की हलचलों में चले आये। काश्मीर आक्रांत हुआ। दो तिहाई भाग पुनः स्वतन्त्र हुआ। एक तिहाई भाग पर पाकिस्तान

अधिकार कर लिया। इस स्थान पर अमेरिकी सैनिक अड्डे की स्थापना हुई। पामीर पठार का यह सर्वोच्च स्थान सोवियत क्षेत्र के समीप ही है। चीन ने कराकोरम के महत्व भूभाग में सड़क बना लिया है। इस सड़क को आक्रामक पाक दौड़ कहते हैं। इन दिनों में [illegible] तथा उक्त स्थानों के पास यातायात ठीक किया जाने लगा है। सैनिक हवाई पट्टियाँ बनाई गई हैं।

इस सिक्यांग तथा पामीर पठार की रेखा पर एशिया तथा विश्व का भावी इतिहास सन् १९५० से ही विज्ञान के साथ मूर्तरूप धारण कर रहा था। रूस भी काकेशश पर्वत मालाओं पर सैनिक महत्व के अड्डों की स्थापना करने लगा।

इसमें सबसे महत्वपूर्ण घटना सोवियत गणराज्य के साथ घटी। सोवियत राज्य ने १९[illegible] में अणु अस्त्र को व्यावहारिक रूप से तैयार कर लिया था। इस घटना का असर हिमालय की घाटियों तक पहुँचा क्योंकि सैनिक अड्डे शक्ति युक्त होते थे। अमरीकी गिलगित अड्डा पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में है। रूस को इसे संतुलित रखने की आवश्यकता है। हिन्दुकुश पर्वत शिखर से कैलाश मानसरोवर, नेपाल, नेफा व बर्मा तक हिमालय की दूरी १५०० मील लम्बा व १५० से २०० मील की चौड़ाई में है। इस भूभाग पर एशिया में पहली बार संप्रभु राष्ट्रों का मिलन, घुसपैंठ, अतिक्रमण व आक्रमण प्रारम्भ हुआ।

प्रथम महायुद्ध के कई कारणों में इतिहासकार इस एक कारण पर सहमत हैं कि १९१४ ई० के लगभग यूरोप पहली बार संप्रभु राष्ट्रों का समूह बना। इस परिस्थिति में टकराव अवश्यँभावी हो गया। यूरोप के संप्रभु राष्ट्र आस्ट्रिया के राजकुमार के मरने के आधार पर अपने व्यक्तित्व को मनचाहे ढंग से व्यवस्थित करने के हेतु शस्त्र उठा लिये। इतिहास साक्षी है कि उनके उठे शस्त्रों ने मानवता को महायुद्ध की लपटों में झोंक दिया। जिसकी लपट आज भी है। ठीक यही परिस्थिति आज एशिया की है।

आधुनिक एशिया संप्रभु राष्ट्रों का समूह इतिहास में पहली बार १९४७ से १९४९ तक की अवधि में बना। हिमालय पर इनके उठे शस्त्र इतिहास के पहिये को खतरनाक मोड़ पर पहुँचा दिये हैं। इसी कारण प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल के शब्दों में यह विश्व की एक भयंकर घटना है। हिमालय के चोटियों पर क्रूर काल अपना भयानक इतिहास लिख रहा था जब कि सारा संसार बर्लिन, कोरिया, हिन्द चीन, कांगो व अन्य स्थानों पर उसके चिन्हों को पढ़ने का प्रयत्न कर रहा था।

आदर्शों एवं आस्थायों का संघर्ष

भारत पर चीनी आक्रमण में आदर्शों की भूमिका अपना स्थान रखती है। यो तो दुनियाँ का इतिहास व युद्ध आदर्शों के कशमकश से भरा पड़ा है हमारे आदर्श दूसरों को ग्राह्य न हों, इसकी भी संभावना ज्यादा रहती है। भारत ने गृह में राजनीतिक व्यवस्थाहेतु संसदीय प्रणाली को अपनाया। पाकिस्तान बुनियादी जनतंत्र व अध्यक्षीय प्रणाली के ताल-मेल में है। यही स्थित नेपाल के भूभाग में पंचायती जनतंत्र के प्रयोग की है। चीन ने 'दलशाही' की स्थापना अपने यहाँ किया। इस 'दलशाही' में फौजी सहयोग अधिकाधिक व्यस्त रहता है। वर्मा का राज्य संसदीय से सैनिक स्थितिके संक्रमण काल में रह रहा है।

भारत ने नागरिक जीवन हेतु समाजवादी समाज रचना के आदर्श को व्यवहार में स्वीकार किया। चीन ने साम्यवादी समाज रचना को अगीकार किया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं व्यक्तिगत सम्पति को भारत ने मान्यता प्रदान किया। चीन ने व्यक्तिगत सम्पति को समाप्त कर दिया। नागरिकों के अधिकारों का केन्द्रीकरण कर दिया।

भारत विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को आर्थिक व राजनीतिक जीवन में सत्य रूप से उतार रहा है। वहीं पर चीन केन्द्रीकरण का रास्ता पकड़े हुये है।

रूस ने विश्व के सन्मुख कम्युनिस्ट समाज की स्थापना किया। कृषि के क्षेत्र में सामुहिक फार्म का आदर्श रखा। चीन ने रूसी साम्यवादी पद्धति के अलावा अपना नया दर्शन कम्यून फार्म का दिया। जिसे साम्यवादी शिविर में न देना चाहिये था।

स्वतन्त्र विश्व के आदर्श के प्रणेता अमेरीका ने कम्युनिटी पद्धति के समाज रचना का आदर्श दिया। इस प्रकार कम्यूनिस्ट समाज व कम्यूनिटी समाज का आदर्श चलने लगा।

इन आर्थिक मान्यतायों से युक्त आदर्शों से विश्व भ्रम में पड़ गया। दुनियाँ की दो महान ताकतें अमेरीका व रूस के आदर्शों पर विश्व के अन्य राष्ट्रों को चलना पड़ा। ऐसा प्रतीत हुआ शेष विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं को अब कुछ करना ही नहीं है। लाओत्से व कन्फ्यूसश ऐसे दार्शनिकों को पैदा करनेवाला चीनी नस्ल इन आदर्शों के गढ़ने में पीछे क्यों रहे? परन्तु, प्रश्न माओ के सन्मुख एक था। वह यह कि पुराने आदर्शों के नारों से वे साम्यवादी शिविर में संशोधन वादी के नाम से पुकारे जाते। यह उनके कामरेडशिया व क्रांति पर कलंक था।

उन्होंने 'कम्यून पद्धति' का आविष्कार किया। इसी के साथ अंतरराष्ट्रीय राजनीति में "युद्ध स्वयं में पूर्ण राजनीति है" का नारा दिया। "सौ फूल एक साथ खिलें" का मोहक नारा दिया। माओ ने लेनिन से भी गुरुतर कार्य अपने जिम्मे रखा। उनकी मान्यता है कि गुलामी अभी पृथ्वी से समाप्त नहीं हुई है। इस कारण विश्व को मुक्त करने हेतु मुक्ति सेना का निर्माण किया। माओ ने कहा है कि यह कार्य चीन के जिम्मे है। अब्राहम लिंकन ने गुलामी को इस पृथ्वी से नहीं हटाया अपितु माओ को यह कार्य करना है। ऐसी माओ स्वयं की मान्यता है।

भारत का वैदिक काल से आदर्श स्वयं मन के जीत के प्रति रहा है इसी कारण परपीड़न व परवशता दोनों से भारत की स्वाभाविक अरुचि रही है। इतिहास काल में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, प्रिय दर्शी सम्राट अशोक एवं हर्षवर्धन के पास असीम साधन व सैन्यबल था। परन्तु इन सम्राटों ने हिमालय व हिन्द सागर के बाहर पग नहीं रखा। सम्राट हर्षवर्धन के पास ६ लाख सेना थी। हूणों वगैरह का निरन्तर आक्रमण हो रहा था परन्तु हर्षवर्धनने कभी दूसरे राज्यों को आक्रांत नहीं किया। इसके विपरीत भारत ने

सांस्कृतिक साम्राज्य का विस्तार किया। इस सांस्कृतिक साम्राज्य संस्थापन में यही भावना थी कि मन का ही नियंत्रण श्रेयस्कर है।
प्राचीन भारत ने भी अपने स्मार्त दर्शन के द्वारा समन्वय की ही परम्परा व आदर्श को कायम रखा। इस धरती ने शक, हूण, मँगोल, गोरी, गजनी, मुगल, यूरोपीय जातियों का सम्मिश्रण व सहअस्तित्व कायम किया। इस दशक में शरणार्थी तिब्बती भाइयों को भी आत्म सात किया। यह भारतीय संस्कृत का समन्वयात्मक स्वरूप है। इसकी जड़े अतीत में इतनी दृढ़ता से गड़ी हैं कि जजबातों के झंझावत दुर्बल नहीं कर सके। यही भारतीय सहिष्णुता का सार व कार्य शक्ति है। प्रत्येक भारतीय में इसकी झलक है। भारत के अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार में इसकी यही गृह नीति परिलक्षित होती है। झगड़ों में शक्ति प्रयोग के स्थान पर पँच निर्णय एवं पँचायती व्यवस्था को भारत ने प्रश्रय दिया। संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत की अटूट आस्था का रहस्य यही है।
बल प्रयोग से विरत हने का संकल्प राष्ट्र के उस अंश से प्रारम्भ होता है जब कि दासता को समाप्त करने के लिये स्वतंत्रता का आंदोलन प्रारम्भ हुआ। बापू के नेतृत्व में विश्व ने "अहिंसा" का संदेश पाया। सत्याग्रह व अहिंसा से दासता की बेड़िया टूट गयीं। इस इतिहास का अमर सन्देश अहिंसा ही है। इस सन्देश को बापू के उत्तराधिकारी एवं राष्ट्र के जन-नायक नेहरू ने अन्तरराष्ट्रीय मंच तक बढ़ाया। ढाई सहस्र वर्ष पूर्व तथागत से मुखरित होने वाला सहअस्तित्व व पञ्चशील का मंत्र राजनीति में आया। श्री जवाहर लाल नेहरू ने अपने ज्ञान से व मानवीय हृदय के स्पंदन से ज्ञात कर लिया था कि चीन का आदर्श इस प्रकार स्थापित हो रहा है कि उसे बदला नहीं जा सकता है। उसके अस्तित्व को भी इनकार नहीं किया जा सकता ।

विज्ञान के कल्याणकारी प्रभाव से मानवता को सुखी बनाया जा सकता है। इसके लिये समझदारी व सहअस्तित्व के मान्यता की आवश्यकता

है। इसी मिलन बिन्दु से "पंचशील" का आदर्श संसार के संमुख आया। संसार ने सोचा कि यह आदर्श उन देशों का है जो सभ्यता के कीर्तिमान में सबसे बुजुर्ग हैं। पश्चिमी विज्ञ पुरुषों की धारणा हुई कि शायद यह सिद्धान्त दोनों देशों की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति एवं मैत्री का अर्वाचीन ढला हुआ प्राचीन स्वरूप ही हो। अमेरिका के भूतपूर्व परराष्ट्र मत्री श्री डलेस ने सहअस्तित्व के दार्शनिक पहलू तक को भी स्वीकार नहीं किया था। उनके अनुसार सहअस्तित्व का अर्थ बुराई को मान्यता प्रदान करना है तथा यह तभी सम्भव होगा जबकि स्वतन्त्रता विश्व की रक्षार्थ शक्ति कमजोरी पड़ जायगी एवं कायरता तथा भीरुतावश इस सिद्धांत को मान्यता देन होगी। उनके विचार आज यथार्थ प्रतीत हो रहे हैं। परन्तु, अपने व्यवहृत स्वरूप में न आ पाने के बावजूद पञ्चशील का दर्शन उच्च स्थान पर है।

इसी प्रकार जीवन के प्रति भारतीय आदर्श व आस्था पूर्ण भौतिक न होकर आत्मतत्व पर आधारित है। वैदिक काल से अब तक के समय में इसकी जड़े मजबूती के साथ गड़ी हैं। इन जड़ों को वैदिक ऋषि, मुनियों तथा ईश्वरीय अवतारों, पैगम्बरों और बौद्धों, जैनों, सिखों, पारसियों, ईसाईयों इत्यादि के सुयोग ने स्थापित किया है। आधुनिक युग में विश्वबन्धु रविन्द्रनाथ टैगोर व बापू ने इस भातृत्व को नवजीवन प्रदान किया। सोये हुए पुरुषार्थ को जगाया और जागते ही साम्राज्यवाद की वेड़िया वलप्रयोग के विना टूट गयीं। यह जीवन का आत्म तत्व अधिकांश भारतीयों के मान्यतानुसार 'कर्म फल' का सिद्धान्त है। मनुष्य के सुकर्म व कुकर्म उसे भोगने पड़ते हैं। इन कर्मफलों के भोगने के लिये जीवन नानारूपों में अवतरित होता रहता है। यही इसका सार तत्व है। यही वैज्ञानिक भित्त है क्योंकि कर्मफल के नष्ट न होने की मान्यता विज्ञान के इस आधार पर स्थापित है कि कोई भी पदार्थ नष्ट नही होता है और उसकी क्रिया-प्रक्रिया चाहे कितनी ही लघु क्यों न हो अस्तित्व के अन्दर आती है।

प्राचीन भारत ने इसी सिध्दान्त के आधार पर अपने ही मन को अपनी ही सीमा में रखते हुये जीवन के कल्याण का रास्ता दिया। अर्वाचीन भारत परपीड़न से इसी कारण दूर है। इसके विपरीत चीन ने जीवन की मान्यता को पूर्ण भौतिकता व असहिष्णुता के आधार पर रखा। इनके अनुसार-मनुष्य कुछ रासायनिक तत्वो के एकाएक संयोग के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला एक यंत्र मात्र है जिसकी समृष्टि से बाहर कोई सत्ता नहीं और जिसकी व्यक्तिगत भावनायें, आशायें, आकांक्षाये पूर्णरूप से व्यर्थ हैं।

सूक्ष्मरूप से कहा जाय तो ज्ञात होगा कि भारतीय मत के अनुसार जीवन "सारपूर्णरिक्तता" है, जब कि चीनीयों के वर्तमान नेताओं के अनुसार यह "व्यर्थपूर्णरिक्तता" है।

जीवन में कितने शत्रुओं का समावेश होगा, इसकी भी गणना चीनी नेता कर चुके हैं। इस गणना के अनुसार चूहे, बिल्ली, कुत्ता, मक्खी, फतिगा इत्यादि को "जनता के शत्रु" के दर्जे में रखा गया। चीनी जनता ने सहज हानि को देखकर इस कार्य में दिलचस्पी लिया। मक्खी मारने वालों तथा कुत्ता, बिल्ली मारने वालों को पुरस्कृत किया गया। इनको राष्ट्रबीर तथा श्रमिक नेता व माओ पुरस्कार से अविभूत किया गया। इस अभियान से जनता युद्धप्रिय हो गई व नारों से बँध सी गई। इस अभियान में जनता को साम्राज्यवादियों के बारे में प्रशिक्षित किया जाता था। साम्राज्यवादियों के प्रति घृणा की भावना को तीव्र से तीव्रतर की जाने लगी। साम्राज्यवादियों की सूची से जनता को अवगत किया जाने लगा। इस सूची में अमेरीका को प्रथम स्थान प्राप्त है। राष्ट्रीय विरोध की भावना उभारी गई। इसी के साथ-साथ तथाकथित साम्राज्यवादियों से आर्थिक सहायता लेनेवाले राष्ट्रों का नाम इनकी सूची में आया। इसके अलावा जो राष्ट्र आर्थिक व सैनिक सहायता लेते हैं या लेते थे उनको ये चीनी नेता अमेरीका के बाद प्रमुख स्थान में रखते हैं। इस प्रकार के वर्गीकरण को 'जनता के शत्रु' की नामावलि प्राप्त होती है। इस सूची को फिर पार्टी

के युद्धप्रिय कार्यकर्ताओं को सौंप दिया जाता है। यही इनका बाहरी राष्ट्र से व्यवहार करने का आदर्श है। ये पार्टी नेता सामान्य जनता को इन सूचियों में बसे हुये नागरिकों व नेताओं को "जनता के शत्रु" के नाम से घोषित करते हैं। इन सभी के साथ वहीं मक्खी, कुत्ता, बिल्ली के समान व्यवहार करने की सीख दी जाती है। इस प्रकार का वातावरण इतना घनीभूत हो गया है कि स्वस्थ्यचिंतन व सहनशीलता का उस धरती से लोप होता जा रहा है। युद्ध ही जीवन व युद्ध ही राजनीति व युद्ध ही आराध्य बनता जा रहा है। कृषि करना, खान खोदना, पढ़ना इत्यादि सभी कार्य को युद्ध करना कहते हैं।

भारत ने सहकारी, सहयोग व सदायशता का मार्ग अपने गृह व विदेश नीति में रखा है। तटस्थता वस्तुतः कार्यशील निर्लिप्तता का ही अंग है। अन्तर्राष्ट्रीय मान्यताओं को अंगीकार करने में भारत ने सदैव अपने गौरव का अनुभव किया है। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की नीति का विरोधी भारत रहा है। विश्व में कटुता के मूलोच्छेद निमित्त सामर्थ के बाहर अन्तर्राष्ट्रीय जिम्मेदारियों का भारत ने सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। विश्व राष्ट्रकुल के मंच से भारत ने चीन की मान्यता को अब तक उठा रखा है। किस प्रकार चीन संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बन जाय, यही चिन्ता भारत को सर्वाधिक रही है। प्रतिफल की आकांक्षा के बिना भारत ने सर्वप्रथम चीन को मान्यता प्रदान किया। बिना मुआबिजा के चीन को भारत ने अपने तिब्बत स्थिति ११ अतिथिभवन, डाक-तार की प्रणाली व अन्य उपकरण मित्रता के आधार पर सौंप दिया।

इसके विपरीत चीन का लक्ष्य मित्रता के अलावा सामान्य व्यवहार से भी हीन स्तर का हुआ। कम अवस्थायों में समझौतों को चीनी व्यवहार व प्रयोग की वस्तु समझते हैं। क्योंकि "शिमला सम्मेलन" की धाराओं से अपने को अलग रखते हैं। इसमें तर्क इनका यह है कि साम्राज्यवादियों द्वारा स्थापित तथा तिब्बत द्वारा प्रतिनिधित्व संधि असंविधानिक है।

परन्तु, राज्य विकास व फैलाव में ये अपने अतीत काल के इतिहास से कुवला खाँ को लेते हैं। इनकी मान्यता है कि कुवला खाँ का घोड़ा जहाँ तक दिग्विजय किया था वह सम्पूर्ण साम्राज्य हमारा है।

चूँकि ये लेनिनवादी हैं अतः किसी राष्ट्र या राज्य पर आक्रमण करते ही नहीं हैं। अपने जघन्य कार्य को जनमत तक स्वीकार करने योग्य करने के लिये ये किसी देश का सिर्फ उद्धार करते हैं। इस प्रकार य शब्दावलियों को गढ़ कर आदर्श खड़ा किये हैं। समझौतों से मुकुर जाना या उसका प्रतिलोमी अर्थ कर देना इनके लिये सरल है।

प्राचीन समय में चीन में छोटी बच्चियों को लोहे के घेरे (रिंग) पहना देते थे। इसका कारण इनकी सौन्दर्य के प्रति छोटे पैर की कल्पना थी और है। पैर पूजक होना इनकी लघु दृष्टि का द्योतक है। इससे स्पष्ट है कि मित्रता व संधि को भी ये थोड़े ही समय व दूरी तक निवाहते हैं। यह भाव तो प्राचीन चीन के समय से चला आ रहा है। आज भी वर्मा में कहावत है कि "चीन जो कहे उसे सुनना चाहिये" इसका स्पष्ट अर्थ है कि चीन विपक्षी की बात पर ध्यान ही नहीं देता है। विपक्षमें तर्कों से अपने को अलग रख कर चीन अपना मत स्थापित करता है।

एकबार अध्यक्ष माओ से एक शिक्षित नवयुवती ने अपने पति के रूखे व्यवहारों की शिकायत को उपस्थित किया था। नवयुवती की शिकायत थी कि उसका पति चन्द्रमा की गोलाई से नफरत रखता है। अध्यक्ष माओ ने कहा कि तुमको चाँद की गोलाई से वास्ता नहीं रखना चाहिये। तुम्हारे लिये रोटी की गोलाई चाँद की गोलाई से श्रेयस्कर है। इस प्रकार की कठोर भौतिकता का वातावरण चीनी धरती पर कायम किया जा रहा है। प्राचीन चीन व नवीन चीन में देश के सांस्कृतिक विरासत का भी सम्बन्ध अब शेष नहीं प्रतीत होता है।

नवीन चीन के निर्माता अध्यक्ष माओ ने अपने जीवन दर्शन में महात्मा लाओत्से के कथन को प्रेरणा के रूप में लिया है। ये वाक्य हैं—

"फूल की जड़े होती हैं, पत्तियाँ नहीं।" माओ ने इन वाक्यों के आधार पर यथार्थवाद को सीखा। परन्तु यह विश्व के सन्मुख स्पष्ट हो चला है कि इन अमृत वाक्यों को भी माओ ने कठोर दमन नीति से विषतुल्य कर दिया है। अधिकतर, माओ ने अपने चेतन को जड़ के साथ एकीकरण करके उसे जड़वत कर दिया है। यही उनकी विडम्बना तथा राजनीतिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का मूलाधार है। जड़वत व्यवहार से पड़ोसी राष्ट्र क्षुब्ध हैं। स्वयं सोवियत संघ परेशानी की स्थिति में पड़ा है। चीन न तो प्राचीन आस्था व आदर्श पर है न तो अर्वाचीन आदर्श व आस्थायों पर कायम है। उसमें समन्वय का पूर्ण अभाव है। प्राचीन जमाने में विश्व के सभी राज्य धर्म के ही नाम पर युद्ध करते थे। यूरोप में ये धर्मयुद्ध सदियों तक चले। एशिया में, खासकर भारत में आक्रमण धर्म युद्ध के आधार पर मध्ययुग तक होते रहे। बाद के नारे धर्म के स्थान पर आदर्श युक्त व अर्थयुक्त होने लगे। इसमें से मित्र देशों व नाजियों (धुरी राष्ट्र) की लड़ाई दो विश्व युद्ध तक स्वतंत्र विश्व बनाम श्रेष्ठ जाति के नाम पर लड़ी गई। यद्यपि इसमें उपनिवेश कायम करने के बहुत से कारण थे तथापि नारा मित्र देशों के तरफ से "स्वतन्त्रता बचाओ" का ही था।

रूसी क्रांति के बाद पूंजीवाद व साम्यवाद का आर्थिक आदर्श विश्व के सामने आया। इसमें दुनियाँ की तमाम जनता को सम्बोधित किया गया कि वे "वर्ग संघर्ष" के आधार पर उठ खड़े हों और अपने आर्थिकहितों की रक्षा सँगठित होकर करें। विश्व के किसी भी समय में इतना व्यापक सम्बोधन सम्पूर्ण मानवताके सन्मुख नहीं किया गया था। इन सम्बोधनों के पूर्व विश्व के जननायकों ने अपने-अपने धर्मों व सेना कि टुकड़ियों को ही सम्बोधित किया था। वर्ग-संघर्ष का नारा देशों की सीमाओं को तोड़ कर विश्व मानस में फैल गया।

आदर्शरूपमें यह नारा आर्थिक कल्याण व समता का ही स्वरूप है। अपने-अपने हितोंके रक्षार्थ आर्थिक क्रांति ने सभी राष्ट्रों व वर्गों के लिये ऐतिहासिक परिस्थितियों का निर्माण किया है।

माओने धर्म, अर्थ व काम के क्षेत्र में नारा गढ़ना श्रेयस्कर नहीं समझा। उन्होंने जीवनके व शब्दके अन्तिम चरण पर अपने निगाहको दौड़ाया। वह शब्द; धर्म, अर्थ, काम के बाद वाला "मुक्ति" का है। माओने "मुक्ति - सेना" व मुक्ति अभियान का कार्य उठा लिया है। यह विश्व के ऊपर नया संकट है।

आक्रमणकारी अपने "नापाक" इरादों को इसी प्रकार ढँककर रखते हैं। दुर्भाग्य से तिब्बत के बाद भारत इस प्रकार के जघन्य आक्रमण का शिकार बना।

भारत जहाँ पर 'हृदय-परिवर्तन' के आदर्श से अपने नागरिकों के बीच व राष्ट्रों के बीच किन्हीं समस्याओं का समाधान ढूँढ़ता है. उसी स्थल पर चीन "मस्तिष्क परिवर्तन" व 'मुक्ति' के नाम पर नागरिकों व राष्ट्रों पर आक्रमण कर बैठता है। यह मनोवृत्ति, पद्धति, तथा कथित आदर्श व आक्रमण सम्पूर्ण मानव पर व्यक्तिगत आक्रमण है। इसमें सभ्यता, संस्कृति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार व मानव की निजी आस्था व आदर्श का पूर्ण मूलोच्छेद विद्यमान है। यह देवासुर संग्राम से बढ़ कर प्रकाश व अंधकार की सनातन संघर्ष की क्रिया है। इसी कारण श्री जवाहरलाल नेहरूने एक लम्बे संघर्षके प्रति राष्ट्रको तैयार रहने के लिये सतर्क किया है। श्री अशोक मेहता ने इसे शस्त्र से ज्यादा शास्त्रीय आक्रमण का नाम दिया है। प्रछन्नरूपसे वर्तमान संघर्ष सैनिक स्वरूप का है। नेफा, लद्दाख व अन्य इलाकों में घमासान युद्ध प्रारम्भ है। इस स्थल पर बिस्मार्क का स्मरण हो आता है। बिस्मार्क ने कहा था कि "रक्त व लोहा" ही राष्ट्र के भाग्य निर्धारक हैं। जहाँ तक चीनी मनोवृत्ति व बढ़ाव का सम्बन्ध है इस संदर्भ में वह कूटनीतिक से अधिकतर सैनिक ही है। १६४७ ई० से १६५१ ई० तक का काल कूटनीतिक महत्व का था। तदुपरांत की अवधि सैनिक तैयारियों व अतिक्रमणों तथा आक्रमणों और सैनिक तरीकोंसे देश रक्षार्थ प्रयत्नों का है। इन प्रयत्नों का काल भारतीय भू-भाग से आक्रमकों के खदेड़ने तक का है।

परन्तु, इस प्रयत्न के साथ ही साथ वे भी प्रयास रक्षार्थ उपयुक्त होने चाहिये जिससे भारत ही नहीं अपितु विश्व के सम्पूर्ण सभ्य नागरिक चीनी कुप्रचारों से अवगत हो सकें। चीन सम्पूर्ण संसार से शांति की बात कहता है और शांति प्राप्ति की ही आशा को प्रकट करता है। परन्तु, उसके विचार व कार्य इस स्तर के हैं कि संसार भयग्रस्त हो गया है। कन्फ्यूसस व लाओत्से के दर्शनों वाला चीन दानवी प्रवृत्ति का आदर्श ग्रहण कर चुका है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण चीनी राज्य उस एक व्यक्ति-माओत्से-तुंग-के कुत्सित व तथाकथित दर्शन का शिकार हो गया है। जैसा कि शिलर ने लिखा है कि हमारी निर्णायक शक्ति से जितने भी पात्र उत्पन्न होते हैं उन सब में हम स्वयं उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार आज माओत्से-तुंग की मनोवृत्ति व उनकी स्वयं की विचारधारा चीनियों को युद्ध के तरफ बढ़ाये जा रही है। 'जनता के शत्रु' का नारा मक्खी, चूहा व कुत्ता से हट कर मनुष्यों के ऊपर आ गिरा है। चीन के विपक्ष में सोचने व कार्य करने वाले व्यक्ति मक्खी, चूहा व कुत्ता के समान हैं। असहिष्णुता व निम्नता इनकी विचारधारा बन चुकी है। इस क्रम का अवरोध चीनी जनता के पुनर्जागरण से ही होगा। इसकी सम्भावना "माओत्से" के नेतृत्व पर है तथा स्वतन्त्र विश्व व मित्र राष्ट्रों की एकता, स्वतन्त्रता और समझदारी पर निर्भर है संयुक्त राष्ट्रसंघ व मित्र देशों को चीनियों के इस धारणा के फैलाव को रोकना ही होगा, कि मनुष्य किन्हीं विशेष नेतृत्व व कल्पित आदर्श के चरितार्थता के लिये सिर्फ ईंधन है।

———

"चीनियों का शब्दकोष में घुसपैंठ"

किसी ग्रीक योद्धा ने कहा था, "मुझे ग्रीक देवताओं की तलवार नहीं चाहिये, मुझे शब्दों के उच्चारण व रचना का ज्ञान चाहिये। मैं सारी धरती को कँपित कर दूँगा"। इसी प्रकार का विचार श्री रुडयार्ड किपलिंग ने भी प्रकट किया है। श्री किपलिंग के अनुसार शब्दों की शक्ति का ज्ञान शुरू से कबीलों के मुखिया को रहा होगा। ये कबीलों के मुखिया इन शब्दों के चमत्कार से अपने कबीलों को इच्छित मनोदशा तक पहुँचा देते थे।

भारत विश्वमें सर्वप्रथम शब्दों की रचना, उच्चारण व उसके प्रभाव से परिचित था। वेदों की रचना व मंत्रों का निर्माण इसी आधार पर किया गया। बैदिक ऋषि मंत्र उच्चारण से देवताओं तक को प्रभावित करते थे। इन शब्द तरंगों से रोग व बाधाओं को दूर करते थे। आज का आधुनिक विश्व इस मत का समथक हो चला है कि ध्वनि तरँगों से वनस्पति व प्राणियों के जीवन को प्रभावित किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय साहित्यों में धनुष टंकारों की ध्वनि से सैनिकों के वधिर होने का वर्णन है। अमेरिका में जेटबमवर्षकों की आवाज से मकानों की खिड़कियाँ तक टूट चुकी हैं। इस प्रकार का प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित हो चुका है। इन शब्दो से भी गहनतर प्रभाव उन अर्थधारी शब्दों का है जिनकी ध्वनि-तरंगियाँ पैमाने पर नहीं मापी जा सकती हैं। इन शब्दों का अर्थ विश्व के नागरिकों के प्रति आत्मा से सम्पूर्ण आत्मा तक भ्रमण करना रहता है। जिस प्रकार राकेट निस्सीम व्योम कल्पनातीत गति से अपनी यात्र करता रहता है, उसी प्रकार ये शब्द ममुष्यों के आत्मागत दूरी में भ्रमण करते रहते हैं। इन शब्दों की अर्थशक्ति, गति व क्षमता उसके निर्माण की

परिस्थिति व निर्माता की योग्यता पर निर्भर करता है। राकेट-रचना से अधिक शिल्पिक ज्ञान की आवश्यकता इसमें पड़ती है।

जब अर्जुन को मोह पैदा हुआ और भगवान सा सखा पाकर भी इनकी युद्ध प्रवृत्ति अग्रसित नहीं हुई, उस समय भगवान ने 'अमरवाणी' का सृजन किया। 'गीता' के नाम से उन वाणियों का संकलन संसार को उपलब्ध है। अर्जुन ने युद्ध किया और भगवान् कृष्ण की वाणी के अनुसार कार्य हुआ।

तथागत ने वाणी के तप व प्रभाव को ठीक से ज्ञात किया था। यही कारण है कि तथागत की अमर करुणा भरी वाणी आज भी करोड़ों के मानस को झंकृत किये हुये है। बापू की वाणी तदुनुसार कार्य से आधुनिक विश्व को पूर्ण ज्ञान है। विपक्षी के प्रति कटुवचन प्रयोग तक को बापू हिंसा समझते थे। इससे स्पष्ट है कि बापू के भी दृष्टिकोण में शब्द प्रयोग शस्त्र प्रयोग के समान सावधानी का प्रश्न है। इसको भी वे अस्त्र मानते थे। साम्यवादी दार्शनिक व विचारक इन पहलुओं के भी प्रति सजग थे। इस कार्य में शस्त्र निर्माण की क्रिया की भी तेजी से "शब्दकोष" निर्माण का कार्य होता है। जिस प्रकार चीन अपने नक्शों से दूसरे देशों के नक्शों पर आक्रमण करता है, तथा शस्त्र से दूसरे देशों की सीमाओं पर दौड़ना चाहता है, उसी प्रकार अपने "शब्द निर्माण" से दूसरे देशों में शब्द कोषों पर आक्रमण करता है। यह घुसपैठ व अतिक्रमण बहुत ही सूक्ष्म स्तर का होता है।

उदाहरणार्थ—साम्यवादी देशों ने इस कल्पना से अपनी राष्ट्रीय सीमाओं को बनाया है कि उसके अन्तर्गत् विश्व के अन्य राष्ट्र आ सकें। सोवियत युनीयन १५ राष्ट्रों का राज्य है (नेशंन इन दी यू० एस० एस० आर०) इसी प्रकार चीनी जनवादी राज्य अभी ५ राष्ट्रों का राज्य है।

विश्व के अन्य भूभागों में राज्यों का राष्ट्र है परन्तु इन मुल्कों में राष्ट्रों का राज्य है। इससे इनके आत्मसात् करने की पद्धति को बल

मिलता है। शेष संसार में राष्ट्र व राज्य का उच्चारण व शब्दों कीरचना इसी प्रकार का है। इससे वे भ्रम में हो जाते हैं कि इन स्थानों पर भी इनके वे ही अर्थ हैं। अमेरीका; ब्रिटेन, फ्रान्स, कनाडा, आस्ट्रेलिया, सयुक्त अरब गणराज्य, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, जापान, मलाया हिन्द्चीन, भारत इत्यादि अन्य सभी जगहों में राष्ट्र ही सर्वोच्च संबोधन व सम्मान का विन्दु है। राज्य की कल्पना के अनन्तर उसका स्थान है। इस प्रकार साम्यवादी 'क्षेत्र' शब्द को राज्य या राष्ट्र के लिये व्यवहृत करते हैं।

दूसरा शब्द संस्कृति है। १९५६ ई० के पूर्व साम्यवादी राज्य व शेष राष्ट्र इस पर साम्यवादी व असाम्यवादी दृष्टिकोण से अर्थ करते थे। परन्तु इधर चीन ने अपने विचारों को जोड़कर इस शब्द का तीसरा रूप खड़ा कर दिया है। यद्यपि, इस संस्कृति शब्द की व्याख्या देश, काल व पात्र के अनुसार हो सकती है। तथापि, माओ ने अपने पुस्तक-न्यूडिमोक्रैसी-में संस्कृति शब्द का अर्थ लेनिन वादी मत को अपने हठ धर्म के साथ जोड़ दिया है। सोवियत यूनियन पूंजीवादी संस्कृति को सहअस्तित्व की राह सेश्रमिक संस्कृति पर लाना चाहती है वहीं पर माओ इसे काउत्सकी-वादी व्याख्या करार देते हैं। इसके अतिरिक्त भारत की समन्वयात्मक वृत्ति की जो सभ्यता उत्पन्न हुई, उस संस्कृति को आधुनिक रूप से मान्यता देने में माओ प्रतिक्रियात्मक संस्कृति की संज्ञा देने में पीछे नहीं हटते हैं। इस संस्कृति शब्द के प्रयोग में चीनी नाजी व फासिस्ट मान्यतायों के राह पर हैं। सामान्य जन-मानस यह समझता है कि उनके संस्कृति शब्द उच्चारण से उनके कार्य सांस्कृतिक होगें। परन्तु, ऐसा होता नहीं है।

इसी प्रकार का शब्द स्वतन्त्रता है। जिस अर्थ में मित्र देश इसका प्रयोग करते हैं उसी अर्थ में चीनी नेता इसे स्वीकार नहीं करते हैं। इनके अनुसार साम्यवादी व्यवस्था के अलावा अन्य राष्ट्र स्वतन्त्र नहीं अपितु बन्धन में हैं। मित्र देशों की लोकशाही शब्द को गुलामशाही कहते हैं।

दलशाही शब्द को लोकशाही में स्वीकार करते हैं। सभ्यता शब्द को साम्यवादी देशों के अलावा सड़ी हुई स्थिति के अर्थ में रखते हैं।

'प्रगतिशील' शब्द को उस अर्थ में नहीं रखते हैं अपितु उस धारा से आधारित रखते हैं जो कि मार्क्स व लेनिन के भाषाओं को अपरिवर्तित स्थिति में स्वीकार करें। इससे स्पष्ट है कि प्रगतिशीलता को चीनीयों के शब्दकोष में अपरिवर्तन के अर्थ में रखा जाता है।

'युद्ध' शब्द का अर्थ ये साम्राज्यवादियों के कार्य से लेते हैं क्योंकि साम्यवादी सिर्फ उद्धार करता है। इनके शब्दकोष का अन्तिम आकर्षक शब्द "उद्धार" है जिसका अर्थ वे अपने आक्रमण के न्यायोचित कृत्य के मनवाने में करते हैं।

आजकल ये 'धर्म' शब्द का भी प्रयोग करते हैं। यद्यपि इसका अर्थ मूल रूप से 'अधर्म' में ही लगाते हैं जिस प्रकार सत्य का अर्थ ये सिर्फ 'प्रचार' के रूप में रख रहे हैं।

'संशोधन' शब्द का अर्थ भ्रष्टता के रूप में लेते हैं। "शान्ति" शब्द का अर्थ तैयारी से करते है। 'सम्मेलन' शब्द का अर्थ प्रचार के साथ मतभेद के विकास में करते हैं। 'जनता' शब्द का अर्थ नागरिकों से न कर शासन के चन्द वरिष्ठ व्यक्तियों से करते हैं। उनकी सुरक्षा में जनता की शान समझी जाती है। 'क्रान्ति' शब्द का प्रयोग व उच्चारण इसी प्रकार करते हैं जैसे कि हम लोग करते हैं। परन्तु उसका अर्थ वे दूसरे रूप में करते हैं। वे भारतीय 'क्रांति' को क्रांति नहीं मानते हैं। उनका आन्दोलन व उपलब्धि ही क्रांति है। 'आन्दोलन' शब्द का अर्थ भी अपने ही लिये सुरक्षित किये हुये हैं। 'साथी' शब्द का अर्थ वे सिर्फ साम्यवादियों के लिये ही प्रयोग में लाते हैं। ऐसी बात नहीं है। साम्यवादियों के भी भीतर वे विभिन्न रूप में इसे प्रयोग करते हैं। 'अलबानिया' जो कि पूर्वी यूरोप का एक छोटा सा राज्य है तथा राजनीतिक स्वरूप में साम्यवादी है, चीन का घनिष्ठ 'साथी' है। वितनाम व हिन्देशिया के कम्युनिस्ट चीन के शब्दकोष में 'साथी' के रूप में हैं। परन्तु, यूगोस्लाविया व अन्य कम्युनिस्ट चीन के उसी प्रकार साथी नहीं हैं जिस प्रकार अलबानिया है।

इस परिभाषा में चीनी इस क्रम से चले हैं कि लेनिन के बाद माओ ही श्रमिकों के एकमात्र आश्रय स्वरूप 'साथी' हैं। इसलिये 'साथी' शब्द

का वास्तविक हकदार वही होगें जिन्हें साथी माओ संबोधित करेंगे। यह दूसरी बात है कि कूटनीतिक रूपों में संबोधन को समान बनाना इन्हें पड़ रहा है। अन्यथा चीन का 'साथी' होना एक अर्थ है और उससे 'साथी' शब्द सुनना दूसरी बात है। शुरू से ही श्रम करना व श्रम की प्रतिष्ठा रखना तथा श्रमिक आन्दोलन करना और संचालित करना एक 'साथी' के अर्थ साधारणतया साम्यवादी मानते हैं। स्वतन्त्रता व समता को कायम रखना साथी का कर्तव्य होता है। यह समता आर्थिक व सांस्कृतिक होती है। स्वतंत्रता राजनीतिक होती है। परन्तु, पेकिंग दरबार में 'अलबानिया' के तुल्य यदि कोई साथी इनका है तो तिब्बती पणछेण लामा क्योंकि इनके साम्राज्यवादी मनसूबे को पूरा करने में तथा गरीब व निरस्त्र खम्पाओं की आजादी को कुचलने में श्री पणछेन लामा पीछे नहीं हटे। इस कारण चीन की वास्तविक शब्दावलि व अर्थावलि में श्री पणछेन लामा को 'साथी' की उपाधि प्राप्त हुई।

इसी प्रकार का कपटाचार चीनियों ने अनेक शब्दों के साथ किया है। "बुद्धजीवी" शब्द को ये ज्यादातर प्रयोग में लाते हैं। इसके सुनने से प्रतीत होगा कि वास्तव में ये बुद्धधारियों की कद्र करते हैं। इससे इनपर एक अव्यक्त श्रद्धा हो जाती है। परन्तु, जब आप इनकी परिभाषा अनुसार उन व्यक्तियों का दर्शन पायेंगे तो स्पष्टतः ज्ञात हो जायेगा कि रुढ़िवादी पिछलग्गुओं को ही ये 'बुद्धिजीवी' कोटि में रखते हैं। महत्वपूर्ण प्रसंग यह है कि देशद्रोही (आक्रांत देश के व्यक्ति) लोगों को बुद्धजीवी कहने में सर्वप्रथम हैं। जो व्यक्ति अपने संस्कृति, सभ्यता, समाज व सर्वोपरि राष्ट्र के लिये बलिदान करने को तत्पर है, उसे ये बुद्धजीवी कदापि नहीं कह सकते हैं।

संसार के जितने भी वाङ्मय में सुन्दर अर्थवाले शब्द हैं, उनको ये विशेष प्रेम से प्रयोग में लाते हैं। इसी कोटि का शब्द "मित्र" है। मित्रता के अर्थ व प्रभाव से चीनी विशेष परिचित हैं। मुख्य रूप से इस रूप में भी कि भारतीय मित्रता सहस्त्रों वर्ष पुरानी है। फाहियान, ह्वेनसांग जैसे ऐतिहासिक यात्री भारत आये और गुरु-शिष्य की परम्परा को देखा तथा मित्रता की शीलता एवं शालीनता को परखा। चीन जानता था कि भारत विश्व की मूल सभ्यताओं का जीवित शेषांग है। इसके साथ षड्यन्त्र

हितकर होगा सिर्फ सभ्यता के ढोंग से। चीनी नेता भी अपने देश का जनमानस गढ़ रहे थे। चीन देश स्वयं ऐतिहासिक रूप में मान्य है। यहाँ पर पुरानी सभ्यता रह चुकी है। जनता को उत्तम उत्तम शब्दों से ही गर्त के तरफ धकेला जा सकता है। शब्दों के पीछे जो अर्थ रहता है सिर्फ उसके अपहरण की ही आवश्यकता रहती है। फिर वह शब्द चाहे कितना ही कोमल व शांति दायक हो, परन्तु उसकी उपयोगिता नष्ट हो कर भयकर हो जाती है।

पचशील शब्द को चीनियों ने प्रपंच फैलाने के हेतु उपयुक्त समझा। महात्मा बुद्ध की वाणी से चीन कभी ज्यादा प्रभावित था। उसने देखा कि भारत अभी भी महात्माबुद्ध को उसी स्नेह से याद किये हुये है। चीनने पचशील की घोषणा साझेदारी के रूप में किया। विश्व के राष्ट्रनायक, यहाँ तक कि स्वयं श्री कुश्चेव भी उनके कपटाचार से उस वक्त तक अनभिज्ञ थे। शब्द को यथावत रख कर उसके अर्थ से ये अपना स्वार्थ साधते हैं। पंचशील की विफलता का मूल कारण यही है। कथनी व करनी, उच्चारण व अर्थ के विरोधाभासों से संसार पीड़ित है। 'मित्र' शब्द के संबोधन से अच्छे व भ्रातृत्व युक्त विचार उठते हैं। परन्तु, यह नवचीनी वाङ्मय का कूटनीतिक शब्द है। इसके शाब्दिक उच्चारण में ये उदार हैं परन्तु व्यवहृत अर्थ में अनुदार ही नहीं अपितु कजूस भी हैं। मित्र देशों में सिर्फ अमेरिका १९४९से को छोड़ कर कोई भी देश इश शब्द के कूटनीतिक पहलू से अवगत न था। इससे चीन के बारे में सम्बधित राष्ट्रों को राय कायम करने में परेशानी का अनुभव हुआ। जहाँ तक भारत के सम्बन्ध में चीन के राय कायम करने व मित्र शब्द के उच्चारण का सम्बन्ध है उसमें बहुत सतर्कता के साथ आगे बढ़ा है। जब कि काश्मीर के सम्बन्ध में सोवियत संघ ने अपनी स्वीकृति भारत के पक्ष में दिया, उस वक्त तथा आगे के काल तक चीन ने मौनालम्बन ही धारण किये रखा। परन्तु, 'मित्र' शब्द को चीन ढोये चला जा रहा था। १९५५ ई० में बांडुंग सम्मेलन के अवसर पर भारत ने चीन को विश्वदर्शन कराया। उसके उम्मीदवारी का समर्थन १९६२ ई०तक राष्ट्रसंघ में किया। परन्तु, चीन ने अपने कपटाचार को छोड़ा नहीं। अपितु प्रकट भी कर दिया। श्री आर० जी० बायड सरीखे विद्वानों के मत को उद्धृत करते हुये श्री अशोक मेहता ने लिखा है कि चीन ने १९५५ ई० से

ही भारत व पाकिस्तान के बीच दरार बढ़ाकर फायदा उठाना शुरु कर दिया था। बाडुंग सम्मेलन की घटना के अलावा पाकिस्तान के नेताओं की चीन यात्रा विशेष कूटनीतिक थी। भारत सिर्फ 'मित्रता' शब्द के भ्रम में पड़ा रहा। 'चेतना' 'फूल' संक्रमण, 'आवश्यकता' इत्यादि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग चीनी नेता करते रहते हैं। इनमें से अधिकांश शब्द पुराने प्रयोग के हो गये हैं। परन्तु 'फूल' शब्द का प्रयोग चीनियों के नेता माओ ने अभी कुछ वर्ष पूर्व ही किया है। 'फूल' शब्द सुनकर कोमल भाव आता है। परन्तु, इसका अर्थ ये काँटा से लगाते हैं और 'परजिग' की प्रक्रिया में इसे गृहनीति के अन्दर व्यवहृत करते हैं। 'चेतना' शब्द को कठमुल्लेपन की भाव में प्रयोग करते हैं।

इन शब्दों में से अधिकाश शब्द पूरे साम्यवादी शब्द कोषों में स्थान पाये हुये हैं। परन्तु, सोवियत संघ इत्यादि राज्यों में इनकी इस प्रकार की हत्या नहीं हो पाई है। परन्तु, चीनी नेताओं ने शब्दों के अन्दर छिपे हुये सौष्ठव का नाश कर दिया है। जैसे अविश्वस्त व्यक्ति को देख कर नागरिक घबड़ाते हैं। उसी प्रकार चीनी मुखों से उच्चरित इन उच्च शब्दों को भी सुन कर विश्व के सभ्य व्यक्तियों को सदमा लगता है। चीनियों की "शब्द-कोष" पर यह नई क्रान्ति है। इसी प्रकार की क्रान्ति इन्होंने अन्य कई मोर्चों पर किया है। परन्तु संसार को इनकी उपलब्धियों का सही ज्ञान अभी तक नहीं हो सका है। चीनी नेता 'वास्तविक' तथा 'वर्तमान' 'उचित' और 'आधुनिक' शब्दों को युद्ध व समझौतों के संदर्भ में प्रयोग करते रहते हैं। स्वतंत्र व मित्र देशों को इनके शब्द रचना का अध्ययन करना चाहिये। भ्रम से बचने के लिये और चीनियों के प्रहारक शक्ति को कुंठित कर देने के लिये इनके भावों को समझना होगा। यह संभव होगा चीनियों द्वारा व्यवहृत शब्दों के बदली हुई परिस्थिति में अध्ययन करने से। प्रमाणिक रूप से चीनियों ने कम्युनिस्ट पार्टी की ८वीं केन्द्रीय अधिवेशन की दशवीं बैठक में शब्द रचना व गलत अर्थ स्थापित करने का प्रयास प्रारंभ किया। उस समय उन्होंने 'महानराष्ट्र' व 'बड़ा-भाई' का ऐतिहासिक शब्द स्थापित किया। इसके अनंतर का काल व कार्य संसार को विदित ही है।

———

इस प्रकार के उपग्रह बन गये हैं कि जिनसे टोह का कार्य तेजी से लिया जा रहा है। टोह वाले उपग्रहों से शत्रु द्वारा छोड़े हुए क्षेप्यास्त्रों की सूचना शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार जवाबी प्रहार से उस क्षेप्यास्त्र को रोका जा सकता है। इसी प्रकार सूक्ष्म जाँच के लिये भी उपग्रहों का उपयोग उपग्रहों के ही खिलाफ किया जा सकता है। इस प्रकार का प्रयोग ५० फीट की दूरी तक हो सकता है। इससे शत्रु के उपग्रह का पूरा-पूरा अध्ययन किया जा सकता है। रूसी वोस्तोक ३ और वोस्तोक ४ का परीक्षण इस क्रम में था। उपग्रहों का प्रयोग बमवर्षक जहाजों के रूप में किया जा सकता है। जिस प्रकार जहाजों का प्रयोग होता है उसी अर्थ में यह प्रयोग सम्भावित भी है। इस क्रम में अभी उपग्रह विरोधी उपग्रह तथा अंतरिक्ष मंच का भी प्रयोग प्रारंभिक अवस्था में चल रहा है। अंतरिक्ष मंच के द्वारा तप्त किरणों को इकट्ठा कर शत्रु के क्षेप्यास्त्रों इत्यादि को गला देना है। जिस प्रकार राम के वैज्ञानिक पुराने जमाने में बड़े-बड़े शीशों का निर्माण करते थे और उन शीशों पर किरणों को इकट्ठा करके शत्रुओं के नावों के पाल इत्यादि को जला देते थे। वर्तमान समय में स्थल पर सैनिक हवाई अड्डों की उपयोगिता संदिग्ध अवस्था में है। अमेरिका के हवाई सेना के मुख्य सेनापति जेनरल कर्टिस ले मे के अनुसार युद्धक विमानों का मस्तिष्क क्षेप्यास्त्रों के विद्युत् कणों वाले मस्तिष्क से अभी भी श्रेष्ठ है। क्षेप्यास्त्रों तथा वायुयानों दोनों की अभी आवश्यकता है। इस संदर्भ में उल्लेख्य है कि किसी भी जगह अड्डों की स्थिति स्वतः आक्रमण को निमन्त्रण देना है। इसी कारण आजकल अमेरिका ने ऐसे विमानों का आविष्कार किया है जो कहीं से भी सीधे ही उड़ान ले सकें और सीधे ही उतर भी सकें। इस प्रकार से इन विमानों को हवाई अड्डों की आवश्यकता नहीं रहेगी। ये विमान शीघ्र ही ऊँची स्थिति को प्राप्त कर शत्रु पक्ष पर बमवर्षा कर सकेंगे। ऐसे विमानों की उपयोगिता निःसन्देह

स्तुत्य है। इन विमानों से 'उपग्रह' तथा 'क्षेप्यास्त्र केन्द्र' से भी अधिक कार्य हो जाने की आशा है। इस विमान के अस्तित्व से रणनीति पुनः वायुयानों के पक्ष में हो जाती है। जैसे पनडुब्बियों के आविष्कार तथा आणविक आयुध सज्जित हो जाने से नौ-सेना की उपयोगिता इस युग में भी कायम ही रह गयी। बल्कि और बढ़ भी गयी। इसी प्रकार 'सीधे उड़ान' तथा 'सीधे उतार' वाले विमानों ने रणनीति में नया मोड़ दिया है। रण-नीतियाँ बन रही हैं और उनकी उपयोगिता परीक्षण के तौर पर प्रस्तुत हो रही है। इन रणनीतियों में पश्चिमी जगत ने एक नया अध्याय को और इधर बीच जोड़ा है। इस नये अध्याय को कौशलपूर्ण आणविक आयुध वाली रणनीति (टैक्टिकल न्यूक्लियर वारफेयर) कहते हैं। इस प्रणाली के द्वारा सम्पूर्ण सामरिक जानकारी का इस प्रकार इस्तेमाल होता है कि प्राचीन तथा नवीन रणसामग्रियों का भरपूर उपयोग हो जाता है। इसके अन्दर क्षेप्यास्त्रों की अचूक चोट की व्यवस्था ५ मील की भी अल्प दूरी में किया जाता है। स्पष्ट है कि इसमें असंख्य केन्द्रों का प्रयोग होगा और शत्रु पक्ष के असंख्य स्थान क्षतिग्रस्त होंगे। इसके साथ ही साथ इस प्रणाली में खर्चे की अधिकता रहेगी। पश्चिमी राष्ट्रों के मत से सोवियत संघ ऐसी व्यवस्था जल्द नहीं कर पा सकेगा। क्योंकि अभी भी पश्चिमी राष्ट्र संयुक्त रूप से सोवियत संघ के गुटों के मुकाबिले आर्थिक सम्पन्नता में हैं।

इस प्रकार विश्व की रणनीति वैज्ञानिक तथा औद्योगिक शक्ति की क्षमता पर निश्चित की जा रही है। इस रणनीति में परिवर्तन तथा उतार-चढ़ाव होता जा रहा है। अमेरिका के प्रथम सूचना केन्द्र की रेखा (सामरिक) प्रशांत तथा अटलांटिक महासागर को काट कर मध्य एशिया के पर्वतों तथा पठारों को पार करती हुई पामीर पठार, हिन्दूकुश पर्वतमाला में गिलगित अड्डा (अमेरिकी-पाकिस्तानी) होती

हुई मानसरोवर के पास से तिब्बत पठार को स्पर्श करती हुई प्रशांत में पुनः जा मिलती है। विशेष उल्लेख्य है कि १६६० ई० के शिखर-सम्मेलन के समय यू० २ विमान का संचालन गिलगित से होता हुआ मध्य एशिया की रेखा से बढ़कर सोवियत संघ के अन्दर तक हुआ था। इस पथ का निर्धारण सोवियत संघ के प्रयत्न से प्रकाश में आया। इस प्रकार स्पष्टतः विश्व के रणनीति में अपनी भौगोलिक श्रेष्ठता तथा राजनीतिक विभाजक की स्थिति से हिमालय का स्थान महत्वपूर्ण बना रहेगा। टैक्टिकल न्यूक्लियर अस्त्रों के प्रयोग से हिमालयवर्ती क्षेत्र की श्रेष्ठता सर्वदा बनी रहेगी। "सीधी उड़ान" तथा "सीधी उतार" पद्धति के युद्धक विमानों के अस्तित्व से भी इस क्षेत्र का सैनिक महत्व कम नहीं होगा। इसके अलावा अन्तरिक्ष के यानों द्वारा फोटो लेना और केन्द्रों पर उपग्रहों द्वारा बमवर्षा करना सम्भव होता जा रहा है। इस दशा में हिमालयवर्ती अड्डे ही जल्द फोटो औ लक्ष्य में न आ पायेंगे। विद्युत्-कणों युक्त दिमाग तथा अणु-आयुध वाली तोपों से सज्जित सैनिक अड्डा (हिमालय स्थित) लगभग यूरोप एशिया और अफ्रिका तक मारक शक्ति रख सकेगा। इस प्रकार स्पष्टतः हिमालय के सर्वोच्च स्थानों की चौकियाँ भविष्यगत महत्व को रखती हैं। जब तक संसार में युद्ध का वातावरण है तथा अणुयुद्ध में बिश्वासी वर्तमान चीनी नेता हैं तबतक निश्चित रूप से हिमालय के स्थानों को गिनती आध्यात्मिक महत्व में न रखकर सैनिक महत्व में ही रखना उपयुक्त होगा। यह अणु-युग तथा अन्तरिक्ष युग का ऐतिहासिक संकेत है।

भारत की प्रारंभिक कठिनाइयाँ

सन् १९४७ ई० से १९५० ई० की अवधि ने हिमालय के क्षेत्र पर आधुनिक एशिया के अन्दर उत्पन्न होने वाली ऐतिहासिक प्रक्रिया को उपस्थित किया। यह प्रक्रिया एशिया में संप्रभु राष्ट्रों के उदय होने से पैदा हुयी है। परन्तु, हिमालय के इस दक्षिणी उपमहाद्वीप में भी इतिहास अपने नूतन अंगों को प्रकट कर रहा था। ब्रिटिश काल का हिन्दुस्तान दो खंडों में बट चुका था। धरती के बंटवारे के साथ साथ सहस्त्रों वर्ष तक साथ रहने वाली कौमों का मन भी विभक्त हो गया। जिस धरती पर १८५७ ई० में हिन्दू मुसलमानों ने एक झंडे के नीचे यूरोपीय शक्ति के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रताके लिए बलिदान किया, उसी धरती को अपने ही हाथों ने अपने भाइयों के रक्त से रंजित कर दिया। वह समय सांप्रदायिक उपद्रवों का हृदय विदारक अध्याय है। मानवता सिहर उठी थी। प्राच्य सभ्यताओंवाला यह देश शर्म से नतमस्तक हो गया था। पश्चिम के राष्ट्र कहना शुरू कर दिए थे कि अभी हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के नागरिक राजनीतिक प्रशासन संभाल नहीं सकते हैं। इस प्रकार की टिप्पणियों एवं इन दोनों देशों के असभ्य व्यवहारों के बीच सांप्रदायिक शक्तियाँ गतिशील थीं। नोआखाली-कांड, पश्चिमी पंजाब व बिहार कांड तथा कश्मीर पर कबाइली आक्रमणों की श्रृंखलायें सभी उस इतिहास की सांप्रदायिक घटनाओं के अंग हैं जिसे पाकिस्तान व भारत ने पैदा किया था। भारत के ऊपर करोड़ों उन नागरिकों का भार आ गया जो वस्तुतः अपनी मातृभूमि, जिसे पाकिस्तान कहा जाने लगा है, में रहने के अधिकारी हैं। वे निराश्रित पुरुष व स्त्रियाँ, बच्चे व बूढ़े अपने अपने

दिलों का बंटवारा

साथ भग्न दिलों की वास्तविक गाथाओं को भारत तक लाथे। उनकी दुखभरी कहानी पत्थर हृदय को भी पिघला देती है। भारत के संमुख उनके बसाने की समस्या उठ खड़ी हुई। यूरोप, अफ्रीका व दक्षिणी अमेरिका के राष्ट्रों की अलग अलग जितनी सम्पूर्ण आबादी हैं उतने लोगों को भारत ने बसाया। उनके मकान, व्यवसाय, शिक्षा व शिक्षा व चिकित्सा तथा पूर्ण नागिरता का प्रबन्ध भारत ने किया। शरणार्थियों को बसाने की व्यवस्था को जिस तत्परता के साथ भारत ने किया, इसकी प्रशंसा संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधिकारियों ने भी किया है। भारत ने शरणार्थियों की समस्या को पूर्ण सुलझाने की दशा में 'दंडकारण्य' योजना को चलाया। इस योजना से ही प्रकट है कि भारत का कार्य उसकी ईमानदारी व नागरिकों के प्रति उसके कर्तव्यों का ठोस परिणाम है। आज भी अरब राष्ट्र व इसराइल के शरणार्थी तंबुओं में पड़े हुए हैं। परन्तु उस समय भारत के सभी साधन युद्धस्तर से शरणार्थियों को बसाने व उनके हितार्थ कार्य कर रहे थे। भारत का परराष्ट्र मंत्रालय पाकिस्तान से पत्राचार चला रहा था। उसका प्रयत्न था कि सांप्रदायिक आग भड़कने से रोकी जाय तथा नागरिकों के मूल भूत अधिकारों का रक्षा किया जाय। जाति व धर्म के आधार पर नागरिकों को दुख न उठाना पड़े। इस कार्य में भारतीय परराष्ट्र मंत्रालय को सतत् कार्य रत रहना पड़ा है।

आज भी पाकिस्तानियों के अवैध प्रवेश से राज्य-सरकारें जहाँ पर प्रभावित होती हैं तथा भारत सरकार का गृहमंत्रालय प्रशासनिक उलझनों में पड़ता है, उसी स्थल पर परराष्ट्र मंत्रालय का नीति-नियामक विभाग ऐसे कार्यों से बोझिल होकर राष्ट्र हित की अग्रगामी नितियों के चिंतन से रुक जाता है। परराष्ट्र मंत्रालय को बराबर इसी शरणार्थियों के समस्या पर पुनर्विचार करना पड़ा है। हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के बीच संतुलन बनाये रखने का निरंतर प्रस्तुत सूत्र की

खोज में मंत्रालय उलझा पड़ा रहता है। यह परिस्थिति भारत को विवश किए हुए है। यथार्थ में दिलों का बंटवारा इतने भयंकर परिणामों के साथ भारतमें उपस्थित हुआ कि इतिहास में ऐसा उदाहरण प्राप्त नहीं है।

राष्ट्रों द्वारा राष्ट्रों के बध का इतिहास प्राप्त है। और आज भी हो रहा है परन्तु नागरिकों द्वारा नागरिकों का सामूहिक हत्या व पीड़न की कथा व क्रिया विश्व में अन्यत्र प्राप्त नहीं है। यह स्थान पाकिस्तान व भारत ही है। स्पष्ट है कि इसका असर जनता व जनता के प्रतिनिधियों पर गंभीर रूप से पड़ा हुआ है। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है वह इससे प्रभावित ही नहीं क्षुब्ध हो उठा है। भारत को अपने अनगिनति बंधुओं व बहिनों से हाथ धोना पड़ा तथा हिन्दू मुसलिम एकता के प्रयास में राष्ट्र पिता को खोना पड़ा। श्री जवाहर लाल नेहरू के अनुसार बापू के बाद राष्ट्र की रोशनी ही बुझ गई। वास्तव में भारत जो कि जनता के कल्याण के लिए कार्य कर रहा था वह अपने सामने रक्त की नदियों को बहते देख रहा था। मासूम बच्चों व बहिनों तथा भाइयों का निर्मम बध सिर्फ इस कारण से हो रहा था। कि उनके पिता व माता कातिल व्यक्ति के विपरीत धर्म के थे। इस संपूर्ण बुराइयों के जड़में चेतना युक्त समाज के बटवारे के कारण जिम्मेदार थे। एक जीवित व्यक्ति के अंगछेद से जो मार्मिक दुखानुभूति की स्थिति होती है वही स्थिति अखंड भारत के खंड क्रिया से उत्पन्न हुई थी। पूरा का पूरा उप महाद्वीप एक सांप्रदायिक बीमारी से आक्रांत था। इसके विपरीत चीन के अन्तर्गत ऐतिहासिक क्रिया भिन्न रूप से गतिशील थी। च्यांग की सरकार भयंकर स्थिति में थी। घूसखोरी अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। जीवनोपयोगी वस्तुओं का लोप होता जा रहा था। मूल्य सामान्य सीमाओं को पार कर चुके थे। अमेरिकी प्राप्त सहायता उस रूप में प्रयुक्त नहीं होरही थी

जिस उद्देश्य से उसको स्वीकृति अमेरिकी सरकार अपने कर दाताओं की इच्छाओं के अनरूपचाहती थी। युद्ध-सरदारों का बाहुल्य हो चला था। प्रत्येक सुविधा उनके लिए प्रस्तुत रहती थी। सामान्य जनता परिवर्तन की अपेक्षा लिए बैठी थी। उसकी आकांक्षा अवसर की ताक में थी इसी अवसर पर मात्से-तुंग की सेना, जो कि जापानियों के भगाने में च्यांग का साथ दिए थी और जापानियों के खौफनाक आक्रमण से पीड़ित चीनियों के लिये राष्ट्रीय सेना बन चुकी थी, चीन के मुख्य भूमि पर आक्रमण कर बैठी। उसका आक्रमण सामयिक होने से सफल हुआ और च्यांग को चीन से भागते हुये ताइवान जाना पड़ा। सम्पूर्ण चीनी सामान्य नागरिक परिवर्तन से अप्रसन्न नहीं हुआ। एक तो च्यांग सरकार के कुव्यवस्था से तथा दूसरे अपने ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक भावनाओं से चीनी लोग साम्यवाद का समर्थन करने लगे। चीनियों का स्वभाव होता है कि वे किसी केन्द्रीय सरकार से असंतुष्ट नहीं रहते हैं। चाहे केन्द्रीय सरकार कैसी ही क्यों न हो ? वे अपने अन्दर से परिवर्तन नहीं करते हैं और जबरदस्ती परिवर्तनों के अनुरूप हो जाते हैं। चीनियों ने अतीत में भी अपने केन्द्रीय सरकारों का समर्थन किया है। यही कारण है कि यद्यपि लाल चीनी सरकार बिपरीत अवस्था व आदर्श लेकर बाहर से आई तथापि वहाँ पर क्रांति को सम्पन्न किया। परन्तु, चीनियों ने इसके सैद्धांतिक विरोध के पचड़ों में अपने सिर को कभी नहीं खपाया। यही रिवाज पुराने राजाओं के प्रति भी चीनी जनता का रहा है। इससे चीनी जन नायकों को 'दिलतोड़' परिस्थिति में कार्य नहीं करना पड़ा। जैसी कि परिस्थिति भारत में थी, ठीक उसके विपरीत सुविधा चीनी नेताओं को चीनियों के स्वभाव से स्वतः प्राप्त हो गयी। यह एक महान् कारण है जिसके आधार पर भारतीयों को अपनी प्राप्त व अल्प काल की अर्जित शक्ति को गृह कलह के शांति में ही लगाना पड़ा। जब कि चीनी नेता जन

एकता जल्द प्राप्त कर विस्तारवाद के तरफ कदम बढ़ा दिए। इसी विस्तारवाद में तिब्बत प्रथम आया तदुपरांत वे कोरिया के तरफ अपने डग को बढ़ाये।

पड़ोसी धर्म का निर्वाह

बायिबिल में उल्लिखित पड़ोसी धर्म का अक्षरशः पालन भारत ने अबतक पाकिस्तान के साथ किया है। परन्तु, उपलब्धि तदनुसार न हो सकी है। इस विफलता से कई कठिनाइयों का सृजन हुआ है।

एक तो भारत की शक्ति को पाकिस्तान व हिन्दुस्तान की सीमाओं पर लगाना पड़ रहा है। सम्पूर्ण सीमायें जिस पर रक्षा की आवश्यकता पड़ी हुयी है, यह लगभग २००० मील लम्बी हैं। आपसी संदिग्ध वातावरण के कारण भारत को अपनी सेनायें आत्मरक्षार्थ इन सीमाओं पर रखना पड़ रहा है। इतिहास में ऐसा ही विपर्य राजा रणजीत सिंह जी के साथ था। जब कि लाल रंग, जो कि १८ वीं व १९ वीं सदी तक गुलामी का प्रतीक था, तेजी के साथ दक्षिण से व पूरब-पश्चिम के घाटों से भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र पर फैल रहा था और जिसके फैलाव को सिख राजा ने अपनो दूरदर्शिता से भाँप लिया था तथापि उसके रोकने में प्रभावशाली कदम न उठाये जा सके थे। काबुल की अनबन से राजा रणजीत सिंह को अपने उत्तम कोटि की सैनिक शक्ति को पेशावर के समीप पहाड़ों की रक्षा के लिए रखना पड़ा था। बुद्धिमान राजा भी अपनी प्रतिभा को सिख साम्राज्य के स्थापित्व में वैज्ञानिक परिवर्तनों के अनुरूप लगा न सका। इस वैज्ञनिक परिवर्तन के संकेत को स्वयं यूरोपियों ने संसार को दिया था। इस परिवर्तन में समुद्रीय तट व समुद्रों की लहरों पर उछलती हुयी नौ-सेना की अनिवार्यता थी। जिस तरह का तोपखाना व स्फूर्ति तथा शक्तियुक्त घुड़सवार व पैदल सेना राजा रणजीत सिंह के पास थी, यदि उसमें नौ-सेना का सहयोग प्राप्त हो गया होता तो इतिहास में सिख-साम्राज्य का

में कौन-सा कदम शेष रहेगा ? १०००० फीट से १६००० फीट की ऊँचाई वाला हिमालय जो ट्रांसहिमालय के नाम से भी कहा जाता है अपने ६०० मील की लम्बाई में उस सभी जल को धारण करता है जिसे अरब व हिन्द सागर से मानसूने उठा कर इन चट्टानों पर पटकती हैं और जो बूँद-बूँद केन्द्रित होता है। इसके अलावा हिमालय का गलता हुआ वर्फ व राक्षसमर तथा मानसरोवर का वह जल जो कि अभी उस समुद्र का शेष अंग है जिसमें से हिमवान स्वयं खड़ा हुआ है; इन ६०० मील लम्बाई में फैली धाराओं की जल पूर्ति किया करता है।

चीनी इन धाराओं का शोषण लद्दाख व नेफा में कुछ काल बाद कर सकेंगे, यदि ये भारतीय मैदान में फूट हिल्स के बाद आ पाने में सफल हो सके। इस कारण इनका यहाँ से खदेड़ना भारतीय भूभाग को श्यामलता व जीवन को अक्षुण्य बनाये रखने का ऐतिहासिक कार्य है। हिमालय की लड़ाई भारत के अतीत, वर्तमान व भविष्य के अस्तित्व की लड़ाई है। यह नदी-घाटी योजनाओं से उत्पन्न विश्व की आगामी समस्यायों का सूचांक है। अब तक का संसार नदी-घाटी की सभ्यताओं से परिचित था। परन्तु आगे का संसार नदी-घाटी योजनाओं से ही इतिहास के अध्यायों में चित्रित होगा।

"हिमालय का सामरिक पहलू

भारतीय सेना के इतिहास में हिमालय रक्षा का उत्तरदायित्व सबसे महत्त्व-पूर्ण कर्तव्य है। जिस हिमालय पर महाभारत के विजेता गलने गये थे, उसी हिमालय पर आज के सैनिक १४००० फीट से १६००० फीट की ऊँचाई पर लड़ने गये हैं। विश्व इतिहास में इतनी ऊँचाई पर रूक कर कभी युद्ध नहीं हुआ था। नेपोलियन महान ने अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया था। आल्पस् की ऊँचाई देखकर सैनिक घबरा गये। नेपोलियन महान ने कहा कि आल्पस् है ही नहीं। इस प्रकार सेना आल्पस को पार कर गयी। इससे प्रकट होता है कि सेनाओं का स्थलीय संचारण इतनी ऊँचाई तक हो चुका है। परन्तु, रुककर युद्ध करने की परिस्थिति नयी ही है।

इसा पूर्व से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक भारत पर के आक्रमणों का क्रम हिमालय के ही तरफ से रहा है। सिकन्दर महान ने स्थल मार्ग से भारतभूमि पर आक्रमण का पहला उद्‌घाटन संपन्न किया। परन्तु, तत्कालीन वीर भारतीयों की पंक्ति ने सिकन्दर के मनसूबे को पूरा नहीं होने दिया। उसका तथा उसके अनुवर्तियों का क्षेत्र पंजाब से हटकर अफगानिस्तान हो गया। जो कि कालांतर में भारतीयों द्वारा वहाँ से भी समाप्त किया गया। गोरी, गजनी, मुगल, मंगोल, शक, हूण अनेक आक्रांत भारत पर हिमालय की राह दौड़ पड़े थे। इनमें से अधिकांश लूट-खसोट के लिये आये थे। जो भारत में साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे वे भारतीय बनकर यहीं के हो गये और इस देश की आबो-हवा में अपने को आत्मसात् कर लिये।

हिमालय की सम्पूर्ण लड़ाई में हिमालय का उत्तर-पश्चिमी हिस्सा ही शामिल रहा। इसका उत्तर-पूर्वी भाग लगभग सैनिक हलचलों से

शून्य ही रहा। इस खंड में आक्रमण के यद्यपि एकाध उदाहरण उपलब्ध हैं। नेपाल की तिब्बत सन्धि (१८५६) से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में भी सैनिक संतुलन की आवश्यकता हुयी थी। आसाम के राजाओं तथा अमोर इत्यादि वंशों का, इतिहास बतलाता है कि इस क्षेत्र में सैनिक घटनायें प्राचीन काल में हुयी थीं। परन्तु, इनका व्यापक प्रभाव न था।

उत्तर भारत से संबंधित प्राचीन घटना 'रूप कुंड' का रहस्य है। इस स्थान पर कुछ गोल खोपड़ियाँ भी उपलब्ध हुयी हैं। ये गोल खोपड़ियाँ मंगोल खोपड़ियाँ से साम्यता रखती हैं। इसके अलावा सत्तरहवीं शताब्दी के लगभग भी छोटा-छोटा मंगोल आक्रमण हुआ था। इस प्रकार हिमालय के उत्तर-पश्चिम व उत्तर-पूर्व की दोनों तरफ की जातियों ने आक्रमण किया। आक्रमणों का यह क्रम पूरे हिमालय की लम्बाई में गतिशील रहा। भारतीय वीरों को भी आज के समान कई बार हिमालय के रक्षार्थ पहाड़ों पर लड़ना पड़ा। यद्यपि उन सभी आक्रमणों का उद्देश्य ऐसा नहीं था जैसा कि आज चीन का है। क्यों कि धर्म प्रचार व लूट खसोट, तथा कथित मुक्ति व कब्जा कर लेने कि सम्पूर्ण विकृतियाँ इस आक्रमण में सन्निहित हैं। इसी संदर्भ में यह संकट भूतकाल के संकटों से भिन्न है।

हिमालय का वर्णन भारतीय साहित्यों में प्रचुर रूप में है। इन साहित्यों ने हिमालय के पूरे क्षेत्र से प्रेरणा को ग्रहण किया है। जिस प्रकार हिमालय का प्रत्येक क्षेत्र जल स्त्रोतों का उद्गम है वही स्थिति चट्टानों से मानवीय भावों की प्रेरणा स्त्रोतों की है। इन चट्टानों ने प्राकृतिक बनावट व स्थिति के कारण भारतीय सुरक्षा को भी कायम कर रखा था। भारतीयों का मन इस तथ्य से सहमत था और प्रचुर साहित्य इस भाव के भरे पड़े हैं। कभी भी यह प्रश्न पैदा नहीं हुआ कि हिमालय का सामरिक महत्व नगण्य है। परन्तु, इधर एक दशक

के लगभग जब से चीन ने अपने विस्तार वाद को हिमालयवर्ती क्षेत्रों में बढ़ाया, उसी समय से कम्युनिस्टों ने कहना प्रारम्भ कर दिया कि हिमालय का कोई महत्व नहीं है। इन कथनों में 'अणु-युग' का संदर्भ दिया जाता है। भारतीय कम्युनिस्टों ने 'मित्रता' को ज्यादा स्थान अपने वर्णनों में दिया। इन सभी वर्णनों में हिमालय को रणनीति के महत्व से अलग रखने की कोशिशें हुयीं। इटली के कम्युनिस्ट पत्र ने भी इस पहलू पर प्रकाश डाला। उसके अनुसार हिमालय के क्षेत्रों पर समझौता इस प्रकार से भी कर लेना चाहिये क्योंकि पहाड़ी क्षेत्रों का किसी भी पक्ष के लिये महत्व नहीं है। ऐसे विचार अधिकतर साम्यवादी प्रकट करते रहते हैं। इन सभी विचारों में एक भावना काम करती है। यह भावना इस प्रकार का अंग है जिसमें यह प्रकट किया जाता है कि विपक्षी अपने महत्व के क्षेत्रों की स्थिति का ठीक मूल्यांकन न कर सकें। इसके अलावा जनता व सैनिक अपने रक्षार्थ युद्ध में भी आधे दिल से ही जुटे रहें। शत्रु का भ्रम में रखना रणनीति का व्यापक अंग होता है। चीनियों ने इस भूमिका को अच्छी तरह निभाया। चीनियों ने यह प्रचार किया कि वे हिमालय के क्षेत्र को सिर्फ अपने अधिकार के ही नाम पर चाहते हैं। हिमालय की उपयोगिता का कोई अर्थ उनकी दृष्टि में नहीं है। इसके अलावा चीनियों ने गलत नामकरण करना प्रारम्भ कर दिया। परंपरा गत क्षेत्रों का नाम चीनियों ने अपने नये शब्दावलियों में रखना प्रारम्भ कर दिया। इस गलत नामकरण से उन्होंने भारत को धोखा में रखना चाहा। क्षेत्रों व गांवों का नाम चीनियों ने गढ़ डाला।

क्षेत्र की जनता को भ्रम में रखने के लिये इन्होंने 'नृवंश शास्त्र' का शरण लिया। लोगों को बतलाने लगे कि अमुक नस्ल चीनी है। नस्लों की जानकारी हर प्रकार से प्रत्येक परिवार अपने पूर्वजों से जानता है। मनुष्यों की चेतना शक्ति बताती है कि वे किस जाति व संप्रदाय

के हैं। यह सहज अनुभूति है। प्रत्येक हिमालयवर्ती नागरिक घबड़ा उठा जब कि उसे चीनी धर्मगुरु समझाने लगा कि स्वाभाविक जातिगत ज्ञान भी इस क्षेत्र का अधूरा है। चीनियों के पहले इसाई इन क्षेत्रों में यदा-कदा जाते थे और यहाँ के निवासियों को उनके वर्तमान विचारों से अपने विचारों का तालमेल बैठते थे। परन्तु, चीनियों ने साम्यवादी विचार के अन्तर्गत रहते हुए भी जाति व धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया। इस प्रचार में वे वर्तमान नागरिकों की सहानुभूति उनके पूर्वजों के नाम, रूप व धर्म से प्राप्त करना चाहते हैं। यथार्थ में यह प्रचार धर्म प्रचार नहीं है। इसाई सिर्फ मत परिवर्तन करते हैं परन्तु, चीनी तो मस्तिष्क ही बदल देना चाहते हैं। ये सब प्रचार आक्रमण की भूमिका का निर्वाह करते हैं। चीनियों की महत्वाकांक्षायें तथा अणु-युग के संदेश ने इसे स्पष्ट कर दिया है कि विपक्षियों के इस प्रचार में कि हिमालयका सामरिक महत्व नहीं है, बिलकुल धोखाही है।

हिमालय का सैनिक महत्व अतीत में था। नौ सेना युग से थोड़ा कम हुआ था। इसके बाद हिमालय के उत्तर पूर्व की सीमाओं पर सतर्कता की आवश्यता उस वक्त महसूस हुई जब कि जापान का संभावित आक्रमण द्वितीय महायुद्ध के समय हुआ। आजाद हिन्द फौज ने इम्फल तक कब्जा कर लिया"। इस प्रकार से ये अपने ही भाई बंधु जो कि भारत से ब्रिटिश राज्य हटाने के लिए बर्मा के तरफ से आये थे, इस प्रश्न को भी पैदा किये कि भावी इतिहास किधर से चलेगा?

भारत की समुद्री सीमायें अंग्रेजी, फ्रेंचों, पुर्तगीज, डचों व अन्य नाविक बेड़ों के वीरों से अरक्षित हो गयीं थीं। सत्तहरवीं शती से गुलामी समुद्री किनारों पर काई की तरह छाने लगी। परन्तु, भारत के राजपुरुष समझ न सके और जिन्होंने समझा उनकी संख्या थोड़ी निकली तथा जब पूरा देश जगा तो काफी देर हो चुकी थी। शस्त्रों की

कमी व आपसी फूट के कारण अंग्रेजों ने १८५७ ई० में देश को दबा दिया। उस समय की भूल को थोड़ी बहुत कमियों के बावजूद एक महान् क्रांति से १९४७ ई० में सुधारा गया। सफेद रंग का साम्राज्य-वाद समुद्र के लहरों से सिंध गंगा की घाटियों से होकर कश्मीर तक फैल गया। आज स्थिति यह है कि पीले रंग का साम्राज्यवाद हिमालय के पर्वत पर अड्डा जमाना चाहता है। वहाँ से मैदान पर छलांग लेना चाहता है। यह उसी इतिहास का रंग बदलना व दिशा परिवर्तन हैं। विज्ञान ने समुद्र के महत्व को बढ़ाया और जिन राष्ट्रों ने समुद्र की लहरों पर कब्जा किया वे धरती को अपने वश में कर लिये थे। आज चीनी पर्वत पर चढ़े हैं और विश्व पठार तिब्बत जीतने के पश्चात विश्व में छितरा व छा जाना चाहते हैं।

अणु-अस्त्र परीक्षण एवं हिमालय का क्षेत्र

द्वितीय महायुद्ध की विजय मित्र देशों को अणु पर प्रथम जीत पा जाने से प्राप्त हुई। हिरोशिमा पर बम गिराने के पूर्व पश्चिमी मित्र राष्ट्र अपनी जीत को समझ गये थे। "क्रुसेड इन यूरोप" के लेखक जो कि द्वितीय समर में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के प्रधान सेनापति थे, लिखा है कि धुरी राष्ट्रों को अपनी पराजय का आभास हिरोसिमा से पूर्व ज्ञात हो चुका था। वे मृत्य के खेल को जो दूसरों के लिए बनाए थे, अब स्वयं उसी से खेलने लगे थे। वास्तव में बर्लिन सीमा का युद्ध अन्तिम चरणमें धुरीराष्ट्रों के खात्मे के लिये इतना जोरदार नहीं रह गया था जितना कि मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का स्वयं फैलाव की नीति के कारण स्वयं था। सोवियत संघ की सेनायें तथा ग्रेट ब्रिटेन व अमेरिका की सेनायें बढ़ बढ़ कर बिजित देश की सीमायें व साम्राज्य अपने आधीन अनुकूल परिस्थिति में करने को बाध्य हो चली थीं। आज भी उस समय की मित्र राष्ट्रों को सेनायें साम्यवादी एवं पूँजीवादी सेनाओं के रूप में डटी हुई हैं। 'बर्लिन स्वतंत्रता' की चुनौती

है। इस प्रसङ्ग में विशेष उल्लेख्य है कि इन सेनाओं के बढ़ाव को अणु अस्त्र का भय ही रोके हुये है। परन्तु, इसके विपरीत भारत व चीन जो कि प्राचीनतम राष्ट्र हैं व अभी तक अणु आयुधों से सज्जित नहीं हैं, वे देशों की लम्बी सीमा को वार्तालाप से हल नहीं कर सके। चीन के दिमाग में अणु अस्त्र का भय बुर्जुआ पन की निशानी है। वह अपने राष्ट्रनेता के द्वारा श्री क्रुश्चेव से कहता है कि संसार उद्धार का उसका तथाकथित उद्देश्य अणुभय से रोका नहीं जा सकता है। अणुविघटन के उद्बुद्ध शक्ति से राकेटों के द्वारा वैज्ञानिक अंतरिक्ष पर विजय पाने की सफल कोशिश करने लगे। सन् १९५७ ई० से सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने दूरियां पर विजय पाने के लिये अपनी शक्ति व ज्ञान को प्रकट रूप से आकाश के तरफ कर दिया। अमेरिका ने भी इस अंतरिक्ष यात्रा में पहल किया और सफलता उसे भी प्राप्त हुयी। परन्तु, चीन का ध्यान लगातार हिमालय की घाटियों के बीच की दूरियों पर लगा रहा। सन् १९५३ ई० के ब्रिटिश पर्वतारोहण दल द्वारा हिमालय पर चढ़ाई व एवरेस्ट विजय ने हिमालय के तरफ दुनियाँ का ध्यान खींचा। स्विस भी १९५६ ई० में आये और एवरेस्ट को १९५६ में विजित किये। उस समय यानी १९५३ ई० के लग-भग नेपाल को चीन ने लिखा कि एवरेस्ट हमारा है। भारत के अन्य पर्वतीय अंचलों को भी अपने नक्शे में दर्शाया। इन मानसिक कार्य के साथ-साथ उसने १९६० ई० में विश्व की सर्वोच्च शिखर पर अपने पहुंचने की भी बात संसार को बता दिया। एवरेस्ट के विजित होने की यह ताज्जुबभरी कहानी है। यद्यपि, इसके पूर्व भी एवरेस्ट दो बार विजित हो चुका था तथापि जिन परिस्थितियों में चीनियों ने इसे विजित किया, यह एक अभी रहस्य बना हुआ है।

परन्तु इन सभी प्रयत्नों से इस एक तथ्य का पता चलता है कि चीनियों का अनुराग हिमालय के प्रति १९५३ से अबतक लगातार

बढ़ता ही चला गया है। ये इसे अंतरिक्ष से भी ज्यादा खोजपूर्ण एवं रहस्यमय मानकर इस स्थान के प्रति बढ़ते चले गये। प्रत्येक दुर्रों का जाँच-पड़ताल किया। परन्तु इस जिज्ञास प्रकृति व विस्तारवाद के पीछे चीनियों की एक सुरक्षात्मक नीति हिमालय के साथ नत्थी रही है। यह नीति अणुयुग के कारण उत्पन्न हुयी है। इस प्रसंग में आज सर्वविदित है कि प्रत्येक विकासित राष्ट्र अणु-विघटन पर अपनी प्रतिभा व शक्ति को केन्द्रित किये हुए है। इस कार्य में अमेरिका व सोवियत संघ प्रथम पंक्ति में आते हैं। ब्रिटेन, फ्रांस, पश्चिमी बर्लिन व जापान का स्थान पुनः अणु-विघटक धारी राष्ट्रों में आता है। इन राष्ट्रों के बाद कनाडा, भारत, आस्ट्रेलिया व चीन विश्व के अणु-सूची में अपना स्थान पाते हैं। यह क्रम शैनः शैनः बढ़ता चला जा रहा है। प्रथम पंक्ति के राष्ट्र आज विश्व के विनाशक शक्ति का ७/६ वाँ भाग अपने पास रख छोड़े हैं। दूसरे श्रेणी के राष्ट्र भी अणु-आयुध बना चुके हैं। इसके बाद तीसरी सूची भारत व चीन की आती है। इस प्रकार भारत व चीन अणु-विघटक अपने-अपने यहाँ बैठा चुके हैं। भारत के पास अपनी तीन अणु भट्ठी हो चुकी हैं। भारत विश्व के संमुख यह प्रतिज्ञा ले चुका है कि वह अणु-शक्ति का प्रयोग सिर्फ शांति कार्यों पर करेगा। इस कारण विकसित व अर्जित ज्ञान के बावजूद भारत सिर्फ आइसोटोप्स के उत्पादन व अणु-शक्ति (विजली) के उत्पादन पर जोर दे रहा है। अगस्त, १६५६ ई० में भारत की प्रथम अणु भट्ठी "अप्सरा" की स्थापना हुयी। यह सोवियत संघ के अतिरिक्त एशिया की प्रथम व सबसे बड़ी भट्टी है। भारत ने इससे यांत्रिक व अन्य जानकारियों को लिया व बढ़ाया तथा इसी कार्य में इसे प्रयुक्त कर रहा है। दूसरी भट्ठी "जेरलिना" है। तीसरी "भारत कनाडा" भट्ठी १६६० ई० में बन चुकी है। यह विश्व की सबसे बड़ी आइसोटोप्स उत्पादक भट्ठी है। भारत ने इस प्रकार अणु-शक्ति का

शांति मय कार्य वास्तविक व्यवहार के रूप में ला दिया है। तारापुर (बम्बई के पास) में अणु बिजली घर की स्थापना हो चुकी है। इसी प्रकार की स्थापना अन्य स्थानों पर हो रही है। ये सभी कदम शान्ति पूर्ण व्यवहार के स्थायी सबूत हैं।

इसके विपरति चीन "प्लूटोनियम" तैयार कर रहा है। १४ पौंड प्लूटोनियम से एक छोटा-सा अणु बम तैयार हो जाता है। ऐसी विशेषज्ञों की धारणा है कि चीन प्लूटोनियम की तैयारी तेजी से कर रहा है। उसके पास अणु बम बनाने भर प्लूटोनियम तैयार हो चला है। यह धारणा स्थापित अण-विघटक भट्ठियां की क्षमता से कायम की जाती है। परन्तु; परीक्षणभूमि की कमी चीन के पास है। चीन अपने पूर्वी तरफ समुद्र से घिरा है। उस तरफ के टापूओं पर अमेरीकी सातवें बेड़े का संरक्षण है। उस तरफ चीन अपने भविष्य के बमों को फोड़ न सकेगा। ताइवान टापूओं पर च्यांग सरकार के आधिपत्य से चीन अणु बमों के परीक्षण स्थल की सुविधा से वंचित है। टापूओं का उपयोग इस कार्य में लगभग सभी पश्चिमी राष्ट्र करते हैं। उदाहरणार्थ बिकनी इत्यादि टापूओं पर संयुक्तराज्य अमेरिका आदि अपने परीक्षण को चलाते हैं। इसी प्रकार भूगर्भ में भी परीक्षण निर्जन स्थानोंको खोज कर चलाया जाता है। ब्रिटेन व अमेरिका का परीक्षण ऐसे ही सहकार पर चल रहा है। इस प्रसंग में ज्ञातव्य है कि रूस अपने अणु-विज्ञान के विकास में साइबेरिया की भूमि का उपयोग करता है। साइबेरिया की भूमि व उत्तरी-ध्रुव का विस्तृत भूभाग सोवियत संघ के आधीन है। इस भूमि पर सोवियत संघ स्वेच्छा से अणु-परीक्षण का कार्य करता रहता है। सोवियत संघ के अणु विज्ञान के विकास की क्रिया में साइबेरिया की देन ऐतिहासिक है। इसी भूमि से सोवियत संघ ने अणु-अस्त्रों की परीक्षा को संपन्न किया है और कर रहा है। राकेट, टोटन जैसे भारी युद्धामुख क्षेपास्त्र तथा मेगाटन बम सभी कुछ साइ-

बेरिया के परीक्षण स्थलों से उतीर्ण हुए हैं।

इन सभी परीक्षणों में कुछ सत्यों व स्वार्थों का ख्याल रखा जाता है। सत्य यह है कि परीक्षण के कारण लघुतम हानि हो, इसका ख्याल लगभग सभी अणु-परीक्षक राष्ट्र करते हैं। परीक्षण से वैज्ञानिक ज्ञान की अभिवृद्धि हो। अज्ञात रहस्य प्रकट में आ जाते हैं।

इन सम्भावनायों के प्रति सतर्कता अपेक्षित है। क्योंकि मलेरिया व वैक्टीरिया का उन्मूलन तो कल्याणकारी राज्य में संभव है। परन्तु, देश पर गिरते हुए विकिरण युक्त धूल के पथ से सरकार जनता को सिर्फ अवगत करा सकती है। अन्यथा उसके बूते के बाहर का कार्य है। इस प्रकार २० अप्रैल १६५४ ई० की भारत व चीन संधि अपने सत्य व्यवहृत रूप में देश को इस संकट से बचा सकती है। इसके अतिरिक्त यदि चीन विश्व समझदारी में हिस्सा लेना प्रारम्भ करे तो तिब्बत के क्षेत्र को अणु अस्त्र हीन क्षेत्र घोषित करवाना होगा।

जिस प्रकार प्रयोगशालाओं में प्रयोग चला कर रसायनिक क्रियाओं से तत्वों का पता लगाया जाता है उसी प्रकार इन अणु अस्त्र प्रयोगों से शस्त्रों की क्षमता के साथ व्यवहारिक कठिनाइयों तथा पकड़ में न आने वाली रहस्यमय प्राकृतिक बनावट (अणु) का अध्ययन किया जाता है।

स्वार्थों के संबंध में प्रत्येक अणुपरीक्षक राष्ट्र जानकारियों को गुप्त रखना चाहता है। इस प्रकार वैज्ञानिक जानकारी सीमित व संकीर्ण हो जाती है। इसके अलावा संबंधित राष्ट्र इस ताक में रहता है कि अणु परिक्षण उस मौसम में किया जाये जब कि अणुधर्मी धूल परीक्षक राष्ट्र पर न गिरे। अपितु अन्य राष्ट्रों को इससे बचाया भी न जा सके। हवाओं के दिशा व गतिका अध्ययन करके अनुकूल परिस्थितियोंमें अणु अस्त्रों का परीक्षण किया जाता है। सोवियत संघ द्वारा साइबेरिया में किये गये अणु-अस्त्रों की धूलि जापान इत्यादि टापुओं पर गिरती है।

इसके विषाक्त प्रभाव से पूरा का पूरा सोवियत संघ बचा रहता है। इसी प्रकार से अमेरिका व ब्रिटेन अपने परिक्षणों से अपने देश के नागरिकों को विषाक्त प्रभाव से बचाए रखते हैं। इसके अतिरिक्त जो न्यूनतम मानवीय सेवा ये राष्ट्र करते हैं वह यह है कि अणु-धर्मी धूलों के पथ से संसार को परिचित करा देते हैं।

फ्रांस ने अपने अणु-अस्त्रों का परिक्षण सहारा के रेगिस्तान में संपन्न किया था। इसमें फ्रांस-अपने प्रयोग व तद्‌जनित विषाक्त धूलों के आक्रमण से बचाव तथा लघुतम हानि के सम्पूर्ण सिद्धियों को पाता था। सहारा का रेगिस्तान इन सब स्वार्थों की पूर्ति करता था। समस्या इस प्रकार अणुयुगने प्रत्येक राष्ट्र के लिये यह प्रस्तुत कर दिया है कि वह अणु-अस्त्र के परीक्षण की भूमि की खोज करे। उक्त भूमि में ऊपर वर्णित सभी पहलुओं का स्थान रहे। यही आवश्यकता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है।

चीन एक महत्वकांक्षी राष्ट्र है। इसने इस तथ्य का प्रचार किया कि उसकी क्रांति अपूर्व है। उसने वैज्ञानिक क्षेत्र में अपूर्वता के साथ साथ जल्दीवाजी की भी क्रांति लाने की कोशिश किया। अणु अस्त्र की की तैयारी में सतत् तल्लीन है। वैज्ञानिकों के अनुसार चीन जल्द ही अणुबम बना लेगा। यह संभव भी है तथा उसके युद्ध प्रियता के अनुरुप भी है। परन्तु चीन इस तथ्य से अवगत है कि उसके पास अणु अस्त्रों का परिक्षण स्थल नहीं है वैसे तो चीन एक विशाल राज्य है। परन्तु नव अधिकृत तिब्बत को छोड़कर उसके पास निर्जन भूमि की कमी है। गोबी का मरुस्थल बाहरी मंगोलिया का अंग है। समुद्री टापुओं पर अमेरिकी संरक्षण है। सम्पूर्ण देश पीले रंग के चीनियों के द्वारा घनी आबादी से भरा पड़ा है। इस प्रकार चीन अपने क्षेत्र के अन्तर्गत अणु-परीक्षण नहीं कर सकता है। क्योंकि परीक्षण के द्वारा उत्पन्न धूल से उनके ही देश के नागरिक क्षतिग्रस्त होंगे और जनरोष

सरकार की शक्ति के बाहर हो जायगा। इस कारण चीन ने एक निश्चित योजना व बद्धमूल विचार से ४१ लाख वर्गमील के क्षेत्रवाले तिब्बत को हस्तगत कर लेना स्वार्थप्रद पाया। इन क्षेत्रों में तथा तुर्किस्तानी सिकियांग प्रान्तों में परीक्षण करने से विषाक्त धूल भारत पर गिरेगा जहाँ पर अभी गोली व गोला फेंकने में चीन नाजियों के कुकर्मों से भी बढ़ जाना चाहता है।

"अणु अस्त्र भण्डार गृह व हिमालय"

विश्व की बदलती हुई परिस्थितियाँ विज्ञान की मुखापेक्षी हैं। विज्ञान के बढ़ते हुए कदम इतने समस्याओं का समाधान किये कि समाधान परिवर्तित समस्याओं का रूप ले बैठे। इन समस्याओं से आज का मानव पूर्ण पंगु-सा हो गया है। जनता की गाढ़ी कमाई से व वैज्ञानिकों के मस्तिष्क से अणु-अस्त्र तैयार होता है। दुश्मन को जल्द खत्म कर देने की क्षमता इन अस्त्रों में होती है। पहले दुश्मन जल्द खत्म करने की समस्या को अणु-अस्त्र ने समाधान की सतह पर ला दिया। परन्तु इन अणु-अस्त्रों की विभीषिका व इनके निर्माण पर भारी व्यय तथा इससे भी ज्यादा इसके रख-रखाव की परेशानी ने सम्बन्धित राष्ट्रों के सामने समस्या खड़ी कर दिया है। सर्वोपरि समस्या मानवता के मूलोच्छेद की है। परन्तु पूर्ण वैज्ञानिक व सामरिक पद्धतियों से सोचा जाय तो ज्ञात होगा कि अणु-अस्त्रधारी राष्ट्र सतत् चिंतित रहते हैं। इन राष्ट्रों को इन अस्त्रों के रख-रखाव में बहुत ही सतर्कता निभानी पड़ती है। क्योंकि इस रख-रखाव के सामाजिक व वैज्ञानिक तथा सामरिक पहलू होते हैं। इसका सामाजिक संदर्भ यह है कि अणु-अस्त्र कभी भी कुछ विशेष परिस्थितियों के दबाव में स्वयं विस्फोट कर सकते हैं। इससे रख-रखाव स्थान का अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा तथा आस-पास की जनता का जीवन सर्वदा के लिये विलुप्त हो जायगा। ऐसी आशंका ब्रिटेन के एक अणु-विघटक संस्थान के

समीप तीन वर्ष पूर्व (१६५६) उपस्थित हुई थी। सौभाग्य से उक्त घटना को बढ़नेका अवसर नहीं प्राप्त हो सका था। इसी प्रकार जब हाइड्रोजन बम व अणु अस्त्रवाही युद्धक बिमान शांतिकाल में गश्त करते रहते हैं तो आकस्मिक विस्फोट की पूरी सम्भावना बनी रहती है। हिरोशिमा कांड से इन असावधानियों का मूल्यांकन सहज में किया जा सकता है। इसलिये अणु-अस्त्र उत्पादक राष्ट्र इन आयुधों के रख-रखाव का गोदाम विशेष तकनीकी ज्ञान व बारीकियों के साथ करते हैं। इसमें वे निर्जनता का पहलू अंगीकार करते हैं। ताकि स्वतः विस्फोट से जन-धन की क्षति स्वल्प हो। इस प्रसंग में विशेष उल्लेख्य है कि इन भण्डारों की सुरक्षा का। क्योंकि जहाँ पर अणु-अस्त्र किसी राष्ट्र की सामरिक शक्ति एवं सुरक्षा का आधार है वहीं पर वे भण्डार स्वतः सुरक्षा खोजते हैं। विपक्षी अपने टोह विमानों से ऐसे अड्डों व भण्डारों की जानकारी इकट्ठा करते रहते हैं। यू २का कांड इसका प्रमाण है। इस वर्ष १६६२में भी क्यूबा नाकेबन्दीके अवसरपर अमेरिका अपने टोह-विमानों के द्वारा क्यूबा के सम्पूर्ण राकेटयुक्त अड्डों का पता लगा लिया है तथा उसका चित्र तैयार कर चुका है। इस प्रकार की टोह कार्यवाही सभी अणु अस्त्रधारी राष्ट्र आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र करते रहते हैं। इन कार्यवाहियों से सबसे बड़ा खतरा यह है कि अणु अस्त्र भण्डार शत्रु के लक्ष्यों का शिकार हो जाता है। इस प्रकार अपने ही गाढ़े की कमाई व वैज्ञानिक ज्ञान पर निर्मित अणु-अस्त्रों से उस राष्ट्र का नाश हो जाता है। शत्रु के बमवर्षक अत्यधिक ऊँचाई से अणु-अस्त्र गृहों पर निशाना लगाते हैं। इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक व सामरिक पहलू अणु-अस्त्रों के रख-रखाव में सन्निहित है।

अमेरिका व सोवियत संघ तथा ब्रिटेन व फ्रांस इस प्रश्न पर व्यावहारिक उलझनों के साथ समय बिता रहे हैं। टोह की कार्यवाहियाँ गतिशील हैं। १६६२ ई० के नवम्बर माह में

ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ने एक मंत्री तथा नौ सेना के कर्मचा
के खिलाफ कार्यवाही किया। वे पोलरिस पनडुब्बियों के सम्बन्ध
गुप्त सूचना सामरिक महत्व की सोवियत संघ तक पहुंचाये थे। इस
प्रकट है कि पक्ष-विपक्ष अणु-अस्त्र भंडारों एवं उनके ढोने वाले वाह
का पता लगाने के चक्कर में पड़े हुये हैं। अमेरिक व सोवियत सं
के पास अणु-आयुधों की संख्या सहस्त्रों से ऊपर है। ये राष्ट्र-अप
अपने तरीकों से अपने आयुधों को सुरक्षित किये हैं। वास्तविकता
है कि इनके रख-रखाव में "भूमि गत गृहों" के व्यवहार को अपनाय
गया है। इस प्रकार के "भूमिगत गृह" अधिकतर पर्वतों के पास हैं
इन पर्वतों को भी भूकम्प रहित स्थिति में ही प्रयोग करता है। जि
पर्वतों व पठारों की चट्टानों का अध्ययन भू गर्भ शास्त्र के आधार प
भू कम्प हीन स्थिति में पाया जाता है उसके पास ही अणु-अस्त्रों
रख-रखाव का स्थान तैयार किया जाता है। इसमें ज्ञातव्य है कि
पवतों के ऊपर उड़ाना भर कर टोह कार्य के विमान सुगमता पूर्वक इ
गृहों का पता नहीं लगा सकते हैं। दूसरे, इन स्थलों पर स्वतः विस्फो
हो जाने से जन-धन की हानि भी कम होगी। रूस व अमेरिका
यूराल पर्वत, राकी पर्वत तथा एपलेशियन पर्वत इन प्रकार के उपयुक्त
स्थल हैं।

रख-रखाव का दूसरा तरीका अणु-अस्त्रधारी विमानों का ही
है। इन विमानों पर अणु-आयुध हर क्षण लदे रहते हैं। सतर्कता व
रक्षा के आधार पर ऐसे विमान उड़ानें भरते रहते हैं। इसके अतिरिक्त
पनडुब्बियों का तरीका है। इसमें अणु-आयुध अणुशक्ति से चालित
पनडुब्बियों पर लदे रहते हैं। ये पनडुब्बियाँ समुद्रों के अन्दर विश्व
परिक्रमा किया करती हैं। इनके रास्ते व संकेत व संबंधित कार्यालयों में
निश्चित रहते हैं। खतरे के समय या आवश्यकता के उपयुक्त आवाह
पर ये पनडुब्बियाँ निश्चित स्थान पर सतह पर आ जाती हैं और

राकेटों के अचूक प्रयोग से शत्रु पक्ष पर प्रहार कर सकती हैं। इसी कारण इनके गुप्त भेदों के प्रति शत्रु पक्ष प्रयत्नशील रहते हैं। पोलरिस पनडुब्बियों का कांड इसी कोटि का था। सोवियत संघ अपने क्षेत्र में विशाल मानव कृत समुद्र बना रहा है। समुद्र के भीतर अणुधारी राष्ट्र अपने उन बहुमूल्य उपलब्धियों को सुरक्षित रख सकेंगे जिसके लिये टोह विमान उड़ते रहते हैं। टोह विमानों से तथाकथित सुरक्षित वस्तु तीन विभिन्न घनत्वों के माध्यमों से अलग पड़ जायगी। पहला हवा जिसके अन्तर्गत् विमान उड़ता रहेगा। दूसरी वस्तु जल की सतह होगी जिसके अन्दर अणु-आयुध गृह बना होगा। तीसरी वस्तु व माध्यम स्वतः अणु-आयुध गृह होगा। इस प्रकार तीन विभिन्न माध्यमों से लहरें परावर्तित होकर विमान को सही जानकारी से वंचित कर देंगी तथा संभावित लक्ष्य व प्रहार विफल हो जायगा।

थल के रूप में चीन ने तिब्बत पठार को उपयुक्त समझा है। यह विश्व छत है तथा ऐसा पठार है जो स्थायित्व की स्थिति में है। हिमालय का क्षेत्र भूस्खलन का क्षेत्र है, परन्तु तिब्बत एक भूकम्पहीन क्षेत्र है। ऐसे निर्जन व भूकम्पहीन तथा अगम्य चोटियों से आच्छादित भूभाग में चीनी अपने भविष्य में अणु-आयुध से रखेंगे तथा जैसे श्मशान व कब्रिस्तान की जमीन समाज की हैं उसी प्रकार युद्ध प्रिय चीन संसार को मृतक स्थिति में लाने के लिये तिब्बत के देवोपम भूमि में अणु-आयुध रखेगा और उसे संसार के बध स्थल के रूप में परिणित कर देगा। ऐसी परिस्थिति व संभावना से भारत को सतर्क रहना है क्योंकि इसका कुफल सर्वाधिक भारत के साथ होगा।

"विश्व की रणनीति में हिमालय का स्थान"

हिमालय व रणनीति का संबन्ध हुँजा क्षेत्र व चित्राल की घटनाओं से १६४७ में ही प्रारम्भ हो जाता है। भारतीय किले पर पाकिस्तान अधिकार कर बैठा। इसके पश्चात् कश्मीर पर कबाइलियों के नग्न आक्रमण व पाकिस्तान के द्वारा कश्मीर का एक भूभाग हस्तगत कर लेने से हिमालय का यह क्षेत्र सैनिक महत्व का हो गया। तदुपरान्त, गिलगित में सैनिक अड्डे की स्थापना हो गयी। इससे सामरिक संतुलन का प्रश्न पैदा हो गया। १६४६ ई० से १६५६ ई० तक अमेरिका की नीति यही रही है कि विश्व के सम्पूर्ण भूभाग से सोवियत संघ को सैनिक घेरे बन्दी में रखा जाय। इस नीति में साम्यवाद के प्रसार के रोकने के साथ-साथ उस रिक्तता की पूर्ति का भी भाव छिपा था जो ग्रेटब्रिटेन के साम्राज्य के विघटन से पैदा हो रही थी। शुरु से ही अमेरिकी सरकार व जनता जनतंत्र की हिमायती रही है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी अमेरिकी योगदान व प्रेरणा स्तुत्य रहा है। इस प्रकार अमेरिकी राष्ट्रनायक इस तथ्य से अवगत थे कि एशिया से ग्रेटब्रिटेन की सत्ता जल्द समाप्त हो जायगी। यदि इन अल्प आय व शक्ति के राष्ट्रों की रक्षा न हुयी तो साम्यवाद इन सभी शक्तिहीन रिक्त स्थानों को हड़प लेगा। सैनिक संधियों एवं अड्डों के संस्थापकों का ऐसा मत रहा है और आज भी है। फलस्वरूप जापान, हिन्द-चीन, पाकिस्तान, मध्य एशिया व यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका के देशों में अमेरिकी व संबंधित राष्ट्रों द्वारा सैनिक अड्डों की श्रृंखला कायम की गयी। इस श्रृंखला में हिमालय का शीर्ष स्थान गिलगित भी आया। नौ-सेना युग के बाद वायुयान युग का प्रारम्भ हो चला था। प्रथम महासमर से द्वितीय महायुद्ध तक ग्रेटब्रिटेन ने समुद्रों के लहरों पर शासन व नियंत्रण

को कायम रखा। इसी कारण उसके राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था, परन्तु आगामी युग व तकनोकी प्रभुत्व अमेरिका के साथ चला। अमेरिका ने रणनीति के मूलाधार में वायु शक्तिको प्राथमिकता दिया। उच्चकोटि के तीव्रगति एवं सक्षम वायुयानोंका निर्माण अमेरिका में किया गया। इस तरह रणनीति में पर्वतीय स्थानों एव समुद्री जहाजों की उपयोगिता पहले-सी न रह सकी। शत्रु के महत्वपूर्ण स्थानों पर ध्वनि से तीव्र उड़नेवाले विमानों द्वारा अणुअस्त्र गिराने की क्षमता में अमेरिका ने सर्वोच्च स्थान को प्राप्त किया। इसी कारण सोवियत संघ के चतुर्दिक सैनिक हवाई अड्डों की शृंखला कायम की गयी थी। यह क्रम १९५६ तक बढ़ता गया। सोवियत संघ ने अपने को संकट में पाया। उसने पूरा ध्यान वैज्ञानिक उन्नति के द्वारा इस संकट से मुक्त होने के लिये किया। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। फलस्वरूप, सोवियत संघ ने विश्व के सम्मुख राकेट युग को १९५६ ई० के लगभग प्रस्तुत किया। स्वेज संकट के समय सोवियत संघ ने ब्रिटेन व फ्रांस के खिलाफ राकेट प्रयोग करने की धमकी दिया था। इसके पूर्व सम्पूर्ण पश्चिमी जगत इस नयी रणनीति की क्रिया व क्रांति से अवगत न था। यदि अवगत था तो सिर्फ उसके संभाव्य कल्पना से न कि उसके क्रिया व तकनीकी ज्ञान से। इस प्रसंग में यह ज्ञात है कि अग्निबाणों की तैयारी में रूसने आशातीत सफलता प्राप्त किया। सन् १९५० ई० से १९५६ ई० तक विश्व के राष्ट्रनायक इसी खोज में थे कि क्या रूस के पास उन्नत अणु-आयुध व अणु-रहस्य की उच्च जानकारी है? इस अवधि में रूस दो महान्-नेतृत्वों के प्रभाव से गुजरा। प्रथम, स्टालिन का काल कहा जायेगा। इसी अवधि में रूस अणु-रहस्यों को को जान चुका था। यह समय सोवियत विज्ञान के नींव का कहा जा सकता है। क्योंकि १९४६ ई० तक सोवियत संघ महायुद्ध के विनाश में पड़ा था। महायुद्ध का सबसे घातक प्रभाव तत्कालीन मित्र देशों में

सोवियत संघ पर ही पड़ा था। १९४७ ई० से १९५० ई० का समय सोवियत विज्ञान के इतिहास में सदैव स्मरण किया जायगा। इसके पश्चात् का समय वैज्ञानिक श्रेष्ठता के निर्माण का कहा जा सकता है। इसके पूर्व सामाजिक क्षेत्रों में भी पश्चिमी जननायकों की धारणा बन चुकी थी कि विज्ञान के आधार पर उनकी ही समाजिक व्यवस्था श्रेष्ठ है। क्योंकि अणु-रहस्य को वे ही जानते हैं। इसी बूते वे विश्व में श्रेष्ठ पद्धति के राष्ट्र हैं जहाँ की सामाजिक व्यवस्था वैज्ञानिक खोजों को प्रश्रय देता है तथा प्रतिभा कुंठित नहीं होने पाती है। प्ररन्तु, श्रमिकों के स्वर्ग रूस में जब यह क्रांति हुयी उस समय पश्चिमी देश अत्यधिक संकट में पड़ गये। यह क्रांति जो कि अणु-रहस्य के नाम से ज्ञात है, अतिरिक्त मूल्य के क्रांतिकारी दर्शन से भी ज्यादा रूस के लिये हितकर एवं प्रभाव शाली सिद्ध हुयी। १९५० ई० से १९५६ ई० तक सोवियत संघ तीव्रगति से वैज्ञानिक आधार से सैनिक तैयारी करता रहा। राकेट इत्यादि के प्रयोग चलते रहे तथा सारा संसार वैज्ञानिक भूलभुलैये में पड़ा था। उस समय के संसार को ज्ञात होगा कि उड़न तश्तरियों की खबरें यदा-कदा प्रकाशित होती रहती थीं। इन उड़न-तश्तरियों के खोजने वाले अमेरिकी नभ सेना के उड़ाके ज्यादा तर होते थे। फ्रांस के भी हवाबाज इन खबरों को इकट्ठा करते रहते थे। सम्पूर्ण संसार चकित होता था कि ये उड़न-तश्तरियाँ हैं क्या चीज? सबसे कम टिप्पणी सोवियत संघ के तरफ से होती थी। शायद वह तथ्य से परिचित था। अमेरिकी हवाबाज व विचारक इन उड़नतश्तरियों के अस्तित्व को एक अंश तक स्वीकार कर चुके थे। मंगल व अन्य ग्रहों के जीवधारियों को यह वस्तु समझी जाने लगी थी। परन्तु, सत्य इसके विपरीत था। जैसा आज भी है। अब कभी भी उड़नतश्तरियों का नाम सुनने में नहीं आ रहा है। ४ अक्टूबर १९५८ ई०से इस प्रकारकी खबरों का अस्तित्व समाप्त हो गया। यथार्थ में वे उड़न तश्तरियाँ रूसी

राकेट व अन्तरिक्ष यानों की प्रयोगिक उड़ानें थीं। परन्तु, भ्रम की स्थिति व अपनी श्रेष्ठता का दर्प व विपरीत सोचने की क्रिया ने वैज्ञानिक क्षेत्र में अमेरिका को एक दशक पीछे फेंक दिया। इसको वर्तमान राष्ट्रपति श्री कैनेडी ने भी सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया कि अमेरिका अन्तरिक्ष दौड़ में सोवियत संघ से १० वर्ष पीछे है। अणु-रहस्य का ज्ञान अमेरिका को १९४२ ई० से था। १९५८ ई० में अमेरिका अपने को रूस से पीछे पाया। यह १६ वर्ष की लम्बी अवधि दो खंडों में विभक्त है। प्रथम दशक अमेरिकी श्रेष्ठता के हैं। उसके उपरांत अमेरिका के भ्रम में रहने का समय द्वितीय दशक का है। अमेरिका के पास टोह लेने के तथा सूचनाओं के इकट्ठा करने वालों के अतिरिक्त प्रभूत वैज्ञानिक साधन थे, परन्तु सुरक्षा की नीति में जो मोड़ विज्ञान पैदा कर रहा था उसकी खबर उसे नहीं थी। यही कारण है कि अमेरिका स्वेज कांड के समय रूसी चेतावनी से सहसा चौंक पड़ा था। तथा स्वेज उद्धार के उद्देश्य में ब्रिटेन व फ्रांस अपने को मझधार में बहते हुये पाये। इसके अतिरिक्त आइक वैकुअम पावर थ्योरी जो कि मध्यपूर्व एशिया के लिये बनी थी, सिर्फ कागज के पन्नों पर रह गयी।

'सोवियत संघ' ने रक्षा नीति में दूर मारकर क्षेप्यास्त्रों को स्थान दिया। अन्तर महाद्विपीय क्षेप्यास्त्रों से विश्व का कोना-कोना अपने को असुरक्षित पाया। हवाई पट्टियों एवं सैनिक संधियों की उपयोगिता व्यर्थ प्रतीत हुयी। विश्व के सभी राष्ट्र आक्रमण के शिकार हो सकते हैं, ऐसी स्थिति को क्षेपास्त्रों ने पैदा कर दिया। सम्पूर्ण संसार इस तथ्य से परिचित है कि इस परिवर्तन ने सोवियतसंघ को एक लाभप्रद स्थान पर पहुँचा दिया। संसार के उपनिवेशवाद से लड़नेवाले देशों को सोवियत श्रेष्ठता सेबल मिला। सोवियत संघ स्वयं उद्दार बना। यह नीति कमोवेश रूप में चल रही है।

अमेरिका ने अपनी रक्षा-नीति का मूल्यांकन किया तथा परिवर्तन किया गया। अमेरिका ने कठिनाई के साथ इस निर्णय को स्वीकार किया कि राकेट व अन्तरमहाद्वीपीय क्षेप्यास्त्रों ने विश्व को "किलायुग" में पहुँचा दिया है। कोई भी राष्ट्र क्षेपास्त्रों की सहायता से वायुसेना व नौसेना तथा बढ़ती हुई स्थल सेना को रोक सकता है। इतना ही नहीं इन क्षेप्यास्त्रों की सहायता से शत्रु-राष्ट्र के सामरिक केन्द्रों एवं रीढ़ उद्योग धंधों को भी ध्वस्त किया जा सकता है। जैसा कि अब प्रकट होता जा रहा है कि आधुनिक युद्ध अधिकांश रूप में नागरिकों के लिये विशेष कष्टप्रद है। क्योंकि सैनिकों को अणु-आक्रमणों के प्रति सूचना भी शीघ्र मिल जायगी और उनके लिये रक्षा-गृह भी बन रहे हैं। अर्थ की दृष्टि से समृद्धि राष्ट्र अमेरिका भी अपने सम्पूर्ण नागरिकों के लिए अणु-आक्रमण बचाव गृह नहीं बनवा सकता है। यद्यपि वहाँ पर न्यूयार्क जैसे बड़ों शहरों के लिये "मास्टर प्लान" में उन स्थानों व सावधानियों के प्रति व्यवस्था में प्राथमिकता प्राप्त हो रही है। ये स्थान व सावधानियाँ "भूमिगत बचाव" गृहों के निर्माण के संदर्भ में हैं। उन स्थानों तक कुछ मिनटों के भीतर पहुंचने के लिये यातायात व सड़कों का प्रबन्ध हो रहा है। अधिकांश कार्यालय भूमि के अन्दर ही ज्यादातर बन रहे हैं और उनके निर्माण में उन वस्तुओं का प्रयोग चल रहा है जिससे आशा कि जाती है कि विकिरण व अन्य घातक असर फैल न सके। इसके अतिरिक्त इन मकानों में यह पहलू भी जुटा रहता है जिसे संयोग या चांस कहा जाता है। कल्पना के अनुसार ध्वस्त भूमि का नकशा तैयार किया जाता है। इसमें यह सोचा जाता है कि शेष भाग बच जायगा। तृतीय महासमर को कल्पना तथा उसकी विभिषका इस स्थिति में पहुँच गयी है कि राज्यों के कर्णधार अपने अपने देश के नागरिकों का प्रतिशत इकट्ठा कर रखे हैं। इन प्रतिशतों से यह समझा जाता है कि युद्ध के पश्चात कुछ प्रतिशत नागरिक बच

जायेंगे। यथार्थ में आज शांति व युद्ध की संभावना अपने-अपने चरम विन्दु तक पहुंच गयी है। दोनों पहलू क्रियाशील हैं। प्रसिद्ध विश्व विचारक श्री बरेंड रसेल ने लिखा है कि यदि अणु-युद्ध प्रारम्भ हुआ तो लाभ की स्थिति में चीन हो रहेगा। क्योंकि चीन की अतुल जन-संख्या अणु के घातक मार के बावजूद शेष रह ही जायगी। इस प्रकार से युद्ध के पश्चात् का प्रतिशत शेषांश स्वयं एक कल्पना ही है। रण-नीति के नियामक आज ऐसी विधि व विधान की खोज में हैं कि सेना के साथ नागरिक भी सुरक्षित रखे जा सकें। घातक अस्त्रों (डिटरेंट) का आविष्कार व उत्पादन तीव्रतम गति से हो रहा है। पक्ष-विपक्ष की मान्यता है कि अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करके शत्रु देश पर कहर ढाया जा सके।

आज राकेटों का निर्माण रूस व अमेरिका दोनों पक्षों में हो रहा है। ८००० मील की दूरी तक इन अस्त्रों का प्रयोग हो सकता है। इन दूरगामी क्षेपास्त्रों के साथ-साथ मध्यम दूरी व लघु दूरी तक के क्षेपास्त्रों का उत्पादन किया जा रहा है। प्रतिरक्षा सम्बन्धी एक ब्रिटिश संस्था ने सोवियत संघ व अमेरिका का तुलनात्मक वर्णन नवम्बर १९६२ ई० के अपनी पुस्तिका में दिया था। उक्त पुस्तिका के अनुसार दूरगामी क्षेपास्त्रों के निर्माण में गुणात्मक रूप से सोवियत संघ आगे है। तथापि, यह अन्तर बहुत ही थोड़ा-सा है। क्योंकि क्षेपास्त्रों के निर्माण में सोवियत संघ एक लम्बे अरसे से चुपचाप लगा था। इसके विपरीत अमेरिका का ध्यान युद्धक बमवर्षक के ऊपर अधिकतर केन्द्रित था। अभी भी संख्या के आधार पर तथा गुणात्मक दृष्टिकोण से अमेरिका की स्थिति सुधरी है। मुख्यरूप से अमेरिका के पास क्षेपास्त्रों की संख्या सोवियत यूनियन से अधिक है। १९६२ ई० के अन्त में स्काईवोल्ट के योजना परीक्षण ने रक्षा की नीतियों को एक नया मोड़ प्रदान किया है। मध्यममार व दूरी तथा लघु दूरी के क्षेपास्त्रों को

संख्या पश्चिमी राष्ट्रों के पास अधिक है। इसके अतिरिक्त अन्य सामरिक साधनों की भी तुलना पश्चिमी यूरोप की कई संस्थाओं ने किया है। ब्रिटिश प्रतिरक्षा अध्ययन संस्था ने अपनी रिपोर्ट में बतलाया है कि सोवियत संघ की वास्तविक सैनिक शक्ति ३,५००,००० है। ३५,००० टैंक हैं। १५,००० आधुनिक हवाई जहाज हैं। रूसी सैनिक विषयों के विशेषज्ञ फ्रांसिस विवियन ड्रेक के अनुसार सोवियत सैनिक शक्ति ३,८००,००० है। यह सेना १६० डिविजन्स में विभक्त है। इसी प्रकार चीन के पास १४० डिविजन्स सैनिक बल है। २००० के लगभग हवाई जहाज (सामरिक) हैं। अभी पनडुब्बियों की संख्या कम हैं। नाटो के पास २४ डिविजन्स सेना है। ५००,००० सैन्य बल है। ३००० आधुनिक हवाई जहाज हैं। ५००० के लगभग टैंक है।

इसके अतिरिक्त नौ-सेना का निर्माण भी भयानक गति से हो रहा है। धरती के सतह के ऊपर राकेटों तथा टैंकों और विमानवेधी तोपों से तैयारी होती है। आकाश में 'उपग्रहों' से जासूसी तथा बमवर्षा तक की तैयारी हो रही है। समुद्र के वक्षस्तल पर नौ-सेना के युद्धक पोत मचल रहे हैं। जल के अन्दर अणु-अस्त्र धारी पनडुब्बियाँ चक्कर काट रही हैं। इस प्रकार आज संसार का कोना-कोना और चप्पा-चप्पा तथा हर कोण का क्षितिज युद्ध और सामरिक तैयारियों से पूर्ण है। अकेले सोवियत संघ के पास २६५ से भी अधिक पनडुब्बियाँ अमेरिकी मत के अनुसार हैं। पश्चिमी जगत के सोवियत समस्याओं के विशेषज्ञों के अनुसार यह संख्या अधिक भी हो सकती है। उल्लेख्य है कि सोवियत संघ पनडुब्बियों की संख्या में वृद्धि कर रहा है तथा पनडुब्बियों को अणु-आयुधों से सज्जित भी कर रहा है। यही काम साम्यवादी चीन भी कर रहा है। आज साम्यवादी चीन अपनी पनडुब्बियों की संख्या को बढ़ा रहा है। इसमें महत्वपूर्ण पहलू यह है कि चीन के तट के पास ही अमेरिकी सातवें बेड़े की उपस्थिति ने चीनी नौ-सेना

के निर्माण विकास को अवरोध लगा रखा है। इसी कारण कम्यूनिस्ट चीन ने पनडुब्बियों के निर्माण में शीघ्रता किया। इसके अलावा चीनी युद्ध प्रयास की किसी भी कला में पीछे नहीं रहना चाहते हैं। क्योंकि चीन ने युद्ध को ही जीवन का सर्वांग मान लिया है। इस कारण युद्ध प्रयास में चीनियों ने पनडुब्बियों के महत्व को समझकर जल्द निर्माण कर लेना उपयुक्त समझा है।

इसी क्रम में अमेरिकी शक्ति पनडुब्बियों के सम्बन्ध में अभी भी सोवियत संघ से अधिक है। 'पोलरिस मिसाइल' ढंग की पनडुब्बियों के माध्यम से अमेरिका ने अपनी रक्षापक्ति को पश्चिमी यूरोप व अन्य स्थानों में सुदृढ़ कर लिया है। आज अमेरिका के पास ८ अणु-आयुध सज्जित पनडुब्बियाँ हैं। इनपर १६–१६ पोलरिस मिसाइल तैयारी को हालत में सज्जित रहता है। इन अणु-आयुध युक्त पनडुब्बियों की संख्या जल्द ५ गुनी हो जायगी। इन अणु-आयुध सज्जित पनडुब्बियों में विशेषता यह रहती है कि इनका निश्चित स्थान शत्रु पक्ष को ज्ञात नहीं रहता है। इस प्रकार सटीक प्रहारक शक्ति इन पनडुब्बियों से संभव है। तप्त किरणों (इनफ्रा रेडरेज) के प्रभाव से उपग्रहों को नष्ट किया जा सकता है। परन्तु पनडुब्बियों पर ऐसी क्रिया संभव नहीं है। इस प्रकार अणु-आयुध सज्जित पनडुब्बियों ने पुनः नौ-सेना के महत्व को बढ़ा दिया है और यह कायम भी रहेगा।

अणु-आयुध पनडुब्बियों के सहित अकेले अमेरिका के पास २,३३२ गाड़ियाँ हैं। इनपर से अणु-आयुध ढोकर शत्रु के प्रदेश पर गिराया जा सकता है। फ्रांसिस ड्रेक ने दी रीडर डायजेस्ट अक्टूबर १९६२ के अंक में बतलाया है कि बी-५२ अन्तरमहाद्वीपीय युद्धक ६३० हैं। बी-५८ ध्वन्वातीत अन्तरमहाद्वीपीय युद्धक ९० हैं।

बी-४७ मध्यम दूरी के युद्धक १००० हैं। अन्तरमहाद्विपीय क्षेपास्त्र १००० हैं। अटैक कैरियर ३८४ हैं। इस प्रकार अमेरिका की अणु-

अस्त्र सम्बन्धी युद्ध की क्षमता ५,००० है। आज इसी प्रकार ब्रिटेन की 'वलकन' और विक्टर जेट की शक्ति द्वितोय महासागर के लैंकास्टर से ।५ मिलियन से भी अधिक है। सोवियत संघ ४८ मेगाटन का दानवी विस्फोट कर रहा है। यह विस्फोट विश्व के किसी भी बड़े शहर को तथा उसके आस-पास की वस्ती का पूर्ण-मूलोच्छेद कर सकता है। अमेरिका अपने अणु-अस्त्र के आयुधों को दो अग्रिम रेखाओं के सूचना केन्द्रों से रक्षित किया है। यह रेखा अमेरिका, प्रशांत महासागर तथा अटलांटिक सागर से गुजरती है। दूसरी रेखा अलास्का, कनाडा, ग्रीनलैंड और ब्रिटेन से गुजरती है। इन स्थानों पर ऐसी व्यवस्था है कि राकेटों के विस्फोट की अग्रिम सूचना प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार शत्रु पर जवाबी प्रहार पुराने तथा नये प्रथा के अनुसार १५ मिनट से १५ सेकंड की अवधि में हो जाता है। तैयारी जहाज जो कि सम्पूर्ण शक्ति का ५० प्रतिशत होते हैं वे १५ मिनट की अवधि में कार्यशील हो जाते हैं। ब्रिटिश विक्टर युद्धक विमान दो मिनट की अवधि में तैयार हो जाते हैं। खतरे की प्राप्ति की सूचना पाने पर ही इतनी शीघ्रता से कार्य हो जाता है। इन सूचनाओं के प्राप्ति में आज-कल अंतरिक्ष सनुसंधान का कार्य भी बहुत सहायक हो रहा है। क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधान तथा युद्ध तैयारी में बहुत अन्तर नहीं है। इस प्रकार "टिरास" तथा "सैमास" उपग्रहों की संख्या १३ है जो कि ३०० मील से ५०० मील तक की आकाशीय वृत्त में चक्कर लगाया करते हैं। ये उपग्रह युद्ध के कार्य में लगे वायुयानों की मदद करते हैं तथा पृथ्वी के सतह का फोटो लेकर शत्रु के अड्डों का पता लगाया करते हैं।

इसी प्रकार "ऐना" उपग्रह अंतरिक्ष ज्ञान की जानकारी देते हैं। इन उपग्रहों से प्रकाश फेंका जाता है जिससे वायुयानों तथा पनडुब्बियों और क्षेप्यास्त्रों इत्यादि को सहायता मिलती है। आज

इस प्रकार के उपग्रह बन गये हैं कि जिनसे टोह का कार्य तेजी से लिया जा रहा है। टोह वाले उपग्रहों से शत्रु द्वारा छोड़े हुए क्षेप्यास्त्रों की सूचना शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार जवाबी प्रहार से उस क्षेप्यास्त्र को रोका जा सकता है। इसी प्रकार सूक्ष्म जाँच के लिये भी उपग्रहों का उपयोग उपग्रहों के ही खिलाफ किया जा सकता है। इस प्रकार का प्रयोग ५० फीट की दूरी तक हो सकता है। इससे शत्रु के उपग्रह का पूरा-पूरा अध्ययन किया जा सकता है। रूसी वोस्तोक ३ और वोस्तोक ४ का परीक्षण इस क्रम में था। उपग्रहों का प्रयोग बम-वर्षक जहाजों के रूप में किया जा सकता है। जिस प्रकार जहाजों का प्रयोग होता है उसी अर्थ में यह प्रयोग सम्भावित भी है। इस क्रम में अभी उपग्रह विरोधी उपग्रह तथा अंतरिक्ष मंच का भी प्रयोग प्रारंभिक अवस्था में चल रहा है। अंतरिक्ष मंच के द्वारा तप्त किरणों को इकट्ठा कर शत्रु के क्षेप्यास्त्रों इत्यादि को गला देना है। जिस प्रकार रोम के वैज्ञानिक पुराने जमाने में बड़े-बड़े शीशों का निर्माण करते थे और उन शीशों पर किरणों को इकट्ठा करके शत्रुओं के नावों के पाल इत्यादि को जला देते थे। वर्तमान समय में स्थल पर सैनिक हवाई अड्डों की उपयोगिता संदिग्ध अवस्था में है। अमेरिका के हवाई सेना के मुख्य सेनापति जेनरल कर्टिस ले मे के अनुसार युद्धक विमानों का मस्तिष्क क्षेप्यास्त्रों के विद्युत् कणों वाले मस्तिष्क से अभी भी श्रेष्ठ है। क्षेप्यास्त्रों तथा वायुयानों दोनों की अभी आवश्यकता है। इस संदर्भ में उल्लेख्य है कि किसी भी जगह अड्डों की स्थिति स्वतः आक्रमण को निमन्त्रण देना है। इसी कारण आजकल अमेरिका ने ऐसे विमानों का आवि-ष्कार किया है जो कहीं से भी सीधे ही उड़ान ले सकें और सीधे ही उतर भी सकें। इस प्रकार से इन विमानों को हवाई अड्डों की आव-श्यकता नहीं रहेगी। ये विमान शीघ्र ही ऊँची स्थिति को प्राप्त कर शत्रु पक्ष पर बमवर्षा कर सकेंगे। ऐसे विमानों की उपयोगिता निःसन्देह

स्तुत्य है । इन विमानों से 'उपग्रह' तथा 'क्षेप्यास्त्र केन्द्र' से भी अधिक कार्य हो जाने की आशा है । इस विमान के अस्तित्व से रणनीति पुनः वायुयानों के पक्ष में हो जाती है । जैसे पनडुब्बियों के आविष्कार तथा आणविक आयुध सज्जित हो जाने से नौ-सेना की उपयोगिता इस युग में भी कायम ही रह गयी । बल्कि और बढ़ भी गयी । इसी प्रकार 'सीधे उड़ान' तथा 'सीधे उतार' वाले विमानों ने रणनीति में नया मोड़ दिया है । रण-नीतियाँ बन रही हैं और उनकी उपयोगिता परीक्षण के तौर पर प्रस्तुत हो रही है । इन रणनीतियों में पश्चिमी जगत ने एक नया अध्याय को और इधर बीच जोड़ा है । इस नये अध्याय को कौशलपूर्ण आणविक आयुध वाली रणनीति (टैक्टिकल न्यूक्लियर वारफेयर) कहते हैं । इस प्रणाली के द्वारा सम्पूर्ण सामरिक जानकारी का इस प्रकार इस्तेमाल होता है कि प्राचीन तथा नवीन रणसामग्रियों का भरपूर उपयोग हो जाता है । इसके अन्दर क्षेप्यास्त्रों की अचूक चोट की व्यवस्था ५ मील की भी अल्प दूरी में किया जाता है । स्पष्ट है कि इसमें असंख्य केन्द्रों का प्रयोग होगा और शत्रु पक्ष के असंख्य स्थान क्षतिग्रस्त होंगे । इसके साथ ही साथ इस प्रणाली में खर्चे की अधिकता रहेगी । पश्चिमी राष्ट्रों के मत से सोवियत संघ ऐसी व्यवस्था जल्द नहीं कर पा सकेगा । क्योंकि अभी भी पश्चिमी राष्ट्र संयुक्त रूप से सोवियत संघ के गुटों के मुकाबिले आर्थिक सम्पन्नता में हैं ।

इस प्रकार विश्व की रणनीति वैज्ञानिक तथा औद्योगिक शक्ति की क्षमता पर निश्चित की जा रही है । इस रणनीति में परिवर्तन तथा उतार-चढ़ाव होता जा रहा है । अमेरिका के प्रथम सूचना केन्द्र की रेखा (सामरिक) प्रशांत तथा अटलांटिक महासागर को काट कर मध्य एशिया के पर्वतों तथा पठारों को पार करती हुई पामीर पठार,

हुई मानसरोवर के पास से तिब्बत पठार को स्पर्श करती हुई प्रशांत में पुनः जा मिलती है। विशेष उल्लेख्य है कि १६६० ई० के शिखर-सम्मेलन के समय यू० २ विमान का संचालन गिलगित से होता हुआ मध्य एशिया की रेखा से बढ़कर सोवियत संघ के अन्दर तक हुआ था। इस पथ का निर्धारण सोवियत संघ के प्रयत्न से प्रकाश में आया। इस प्रकार स्पष्टतः विश्व के रणनीति में अपनी भौगोलिक श्रेष्ठता तथा राजनीतिक विभाजक की स्थिति से हिमालय का स्थान महत्वपूर्ण बना रहेगा। टैक्टिकल न्यूक्लियर अस्त्रों के प्रयोग से हिमालयवर्ती क्षेत्र की श्रेष्ठता सर्वदा बनी रहेगी। "सीधी उड़ान" तथा "सीधी उतार" पद्धति के युद्धक विमानों के अस्तित्व से भी इस क्षेत्र का सैनिक महत्व कम नहीं होगा। इसके अलावा अन्तरिक्ष के यानों द्वारा फोटो लेना और केन्द्रों पर उपग्रहों द्वारा बमवर्षा करना सम्भव होता जा रहा है। इस दशा में हिमालयवर्ती अड्डे ही जल्द फोटो औ लक्ष्य में न आ पायेंगे। विद्युत्-कणों युक्त दिमाग तथा अणु-आयुध वाली तोपों से सज्जित सैनिक अड्डा (हिमालय स्थित) लगभग यूरोप एशिया और अफ्रिका तक मारक शक्ति रख सकेगा। इस प्रकार स्पष्टतः हिमालय के सर्वोच्च स्थानों की चौकियाँ भविष्यगत महत्व को रखती हैं। जब तक संसार में युद्ध का वातावरण है तथा अणुयुद्ध में बिश्वासी वर्तमान चीनी नेता हैं तबतक निश्चित रूप से हिमालय के स्थानों की गिनती आध्यात्मिक महत्व में न रखकर सैनिक महत्व में ही रखना उपयुक्त होगा। यह अणु-युग तथा अन्तरिक्ष युग का ऐतिहासिक संकेत है।

भारत की प्रारंभिक कठिनाइयाँ

सन् १९४७ ई० से १९५० ई० की अवधि ने हिमालय के क्षेत्र पर आधुनिक एशिया के अन्दर उत्पन्न होने वाली ऐतिहासिक प्रक्रिया को उपस्थित किया। यह प्रक्रिया एशिया में संप्रभु राष्ट्रों के उदय होने से पैदा हुयी है।

दिलों का बंटवारा

परन्तु, हिमालय के इस दक्षिणी उपमहाद्वीप में भी इतिहास अपने नूतन अंगों को प्रकट कर रहा था। ब्रिटिश काल का हिन्दुस्तान दो खंडों में बट चुका था। धरती के बंटवारे के साथ साथ सहस्त्रों वर्ष तक साथ रहने वाली कौमों का मन भी विभक्त हो गया। जिस धरती पर १८५७ ई० में हिन्दू मुसलमानों ने एक झंडे के नीचे यूरोपीय शक्ति के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रताके लिए बलिदान किया, उसी धरती को अपने ही हाथों ने अपने भाइयों के रक्त से रंजित कर दिया। वह समय सांप्रदायिक उपद्रवों का हृदय विदारक अध्याय है। मानवता सिहर उठी थी। प्राच्य सभ्यताओंवाला यह देश शर्म से नतमस्तक हो गया था। पश्चिम के राष्ट्र कहना शुरू कर दिए थे कि अभी हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के नागरिक राजनीतिक प्रशासन संभाल नहीं सकते हैं। इस प्रकार की टिप्पणियों एवं इन दोनों देशों के असभ्य व्यवहारों के बीच सांप्रदायिक शक्तियाँ गतिशील थीं। नोआखाली-कांड, पश्चिमी पंजाब व बिहार कांड तथा कश्मीर पर कबाइली आक्रमणों की श्रृंखलायें सभी उस इतिहास की सांप्रदायिक घटनाओं के अंग हैं जिसे पाकिस्तान व भारत ने पैदा किया था। भारत के ऊपर करोड़ों उन नागरिकों का भार आ गया जो वस्तुतः अपनी मातृभूमि, जिसे पाकिस्तान कहा जाने लगा है, में रहने के

साथ भग्न दिलों की वास्तविक गाथाओं को भारत तक लाये। उनको दुखभरी कहानी पत्थर हृदय को भी पिघला देती है। भारत के संमुख उनके बसाने की समस्या उठ खड़ी हुई। यूरोप, अफ्रीका व दक्षिणी अमेरिका के राष्ट्रों की अलग अलग जितनी सम्पूर्ण आबादी हैं उतने लोगों को भारत ने बसाया। उनके मकान, व्यवसाय, शिक्षा व शिक्षा व चिकित्सा तथा पूर्ण नागिरता का प्रबन्ध भारत ने किया। शरणार्थियों को बसाने की व्यवस्था को जिस तत्परता के साथ भारत ने किया, इसकी प्रशंसा संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधिकारियों ने भी किया है। भारत ने शरणार्थियों की समस्या को पूर्ण सुलझाने की दशा में 'दंडकारण्य' योजना को चलाया। इस योजना से ही प्रकट है कि भारत का कार्य उसकी ईमानदारी व नागरिकों के प्रति उसके कर्तव्यों का ठोस परिणाम है। आज भी अरब राष्ट्र व इसराइल के शरणार्थी तंबुओं में पड़े हुए हैं। परन्तु उस समय भारत के सभी साधन युद्धस्तर से शरणार्थियों को बसाने व उनके हितार्थ कार्य कर रहे थे। भारत का परराष्ट्र मंत्रालय पाकिस्तान से पत्राचार चला रहा था। उसका प्रयत्न था कि सांप्रदायिक आग भड़कने से रोकी जाय तथा नागरिकों के मूल भूत अधिकारों का रक्षा किया जाय। जाति व धर्म के आधार पर नागरिकों को दुख न उठाना पड़े। इस कार्य में भारतीय परराष्ट्र मंत्रालय को सतत् कार्य रत रहना पड़ा है।

आज भी पाकिस्तानियों के अवैध प्रवेश से राज्य-सरकारें जहाँ पर प्रभावित होती हैं तथा भारत सरकार का गृहमंत्रालय प्रशासनिक उलझनों में पड़ता है, इसी स्थल पर परराष्ट्र मंत्रालय का नीति-नियामक विभाग ऐसे कार्यों से बोझिल होकर राष्ट्र हित की अग्रगामी नितियों के चिंतन से रुक जाता है। परराष्ट्र मंत्रालय को बराबर इसी शरणार्थियों के समस्या पर पुनर्विचार करना पड़ा है। हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के बीच संतुलन बनाये रखने का निरंतर प्रस्तुत सूत्र की

खोज में मंत्रालय उलझा पड़ा रहता है। यह परिस्थिति भारत को विवश किए हुए है। यथार्थ में दिलों का बंटवारा इतने भयकर परिणामों के साथ भारतमें उपस्थित हुआ कि इतिहास में ऐसा उदाहरण प्राप्त नहीं है।

राष्ट्रों द्वारा राष्ट्रों के बध का इतिहास प्राप्त है। और आज भी हो रहा है परन्तु नागरिकों द्वारा नागरिकों का सामूहिक हत्या व पीड़न की कथा व क्रिया विश्व में अन्यत्र प्राप्त नहीं है। यह स्थान पाकिस्तान व भारत ही है। स्पष्ट है कि इसका असर जनता व जनता के प्रतिनिधियों पर गंभीर रूप से पड़ा हुआ है। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है वह इससे प्रभावित ही नहीं क्षुब्ध हो उठा है। भारत को अपने अनगिनति बंधुओं व बहिनों से हाथ धोना पड़ा तथा हिन्दू मुसलिम एकता के प्रयास में राष्ट्र पिता को खोना पड़ा। श्री जवाहर लाल नेहरू के अनुसार बापू के बाद राष्ट्र की रोशनी ही बुझ गई। वास्तव में भारत जो कि जनता के कल्याण के लिए कार्य कर रहा था वह अपने सामने रक्त की नदियों को बहते देख रहा था। मासूम बच्चों व बहिनों तथा भाइयों का निर्मम बध सिर्फ इस कारण से हो रहा था। कि उनके पिता व माता कातिल व्यक्ति के विपरीत धर्म के थे। इस संपूर्ण बुराइयों के जड़में चेतना युक्त समाज के बटवारे के कारण जिम्मेदार थे। एक जीवित व्यक्ति के अंगछेद से जो मार्मिक दुखानुभूति की स्थिति होती है वही स्थिति अखंड भारत के खंड क्रिया से उत्पन्न हुई थी। पूरा का पूरा उप महाद्वीप एक सांप्रदायिक बीमारी से आक्रांत था। इसके विपरीत चीन के अन्तर्गत ऐतिहासिक क्रिया भिन्न रूप से गतिशील थी। च्यांग की सरकार भयंकर स्थिति में थी। घूसखोरी अपनी चरम पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। जीवनोपयोगी वस्तुओं का लोप होता जा रहा था। मूल्य सामान्य सीमाओं को पार कर चुके थे। अमेरिकी प्राप्त सहायता उस रूप में प्रयुक्त नहीं होरही थी

जिस उद्देश्य से उसकी स्वीकृति अमेरिकी सरकार अपने कर दाताओं की इच्छाओं के अनरूपचाहती थी। युद्ध-सरदारों का बाहुल्य हो चला था। प्रत्येक सुविधा उनके लिए प्रस्तुत रहती थी। सामान्य जनता परिवर्तन की अपेक्षा लिए बैठी थी। उसकी आकांक्षा अवसर की ताक में थी इसी अवसर पर मात्से-तुंग की सेना, जो कि जापानियों के भगाने में च्यांग का साथ दिए थी और जापानियों के खौफनाक आक्रमण से पीड़ित चीनियों के लिये राष्ट्रीय सेना बन चुकी थी, चीन के मुख्य भूमि पर आक्रमण कर बैठी। उसका आक्रमण सामयिक होने से सफल हुआ और च्यांग को चीन से भागते हुये ताइवान जाना पड़ा। सम्पूर्ण चीनी सामान्य नागरिक परिवर्तन से अप्रसन्न नहीं हुआ। एक तो च्यांग सरकार के कुव्यवस्था से तथा दूसरे अपने ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक भावनाओं से चीनी लोग साम्यवाद का समर्थन करने लगे। चीनियों का स्वभाव होता है कि वे किसी केन्द्रीय सरकार से असंतुष्ट नहीं रहते हैं। चाहे केन्द्रीय सरकार कैसी ही क्यों न हो ? वे अपने अन्दर से परिवर्तन नहीं करते हैं और जबरदस्ती परिवर्तनों के अनुरूप हो जाते हैं। चीनियों ने अतीत में भी अपने केन्द्रीय सरकारों का समर्थन किया है। यही कारण है कि यद्यपि लाल चीनी सरकार बिपरीत अवस्था व आदर्श लेकर बाहर से आई तथापि वहाँ पर क्राँति को सम्पन्न किया। परन्तु, चीनियों ने इसके सैद्धांतिक विरोध के पचड़ों में अपने सिर को कभी नहीं खपाया। यही रिवाज पुराने राजाओं के प्रति भी चीनी जनता का रहा है। इससे चीनी जन नायकों को 'दिलतोड़' परिस्थिति में कार्य नहीं करना पड़ा। जैसी कि परिस्थिति भारत में थी, ठीक उसके विपरीत सुविधा चीनी नेताओं को चीनियों के स्वभाव से स्वतः प्राप्त हो गयी। यह एक महान् कारण है जिसके आधार पर भारतीयों को अपनी प्राप्त व अल्प काल की अर्जित शक्ति को गृह कलह के शांति में ही लगाना पड़ा। जब कि चीनी नेता जन

एकता जल्द प्राप्त कर विस्तारवाद के तरफ कदम बढ़ा दिए। इसी विस्तारवाद में तिब्बत प्रथम आया तदुपरांत वे कोरिया के तरफ अपने डग को बढ़ाये।

पड़ोसी धर्म का निर्वाह

बायिबिल में उल्लिखित पड़ोसी धर्म का अक्षरश: पालन भारत ने अबतक पाकिस्तान के साथ किया है। परन्तु, उपलब्धि तदुनुसार न हो सकी है। इस विफलता से कई कठिनाइयों का सृजन हुआ है।

एक तो भारत की शक्ति को पाकिस्तान व हिन्दुस्तान की सीमाओं पर लगाना पड़ रहा है। सम्पूर्ण सीमायें जिस पर रक्षा की आवश्यकता पड़ी हुयी है, यह लगभग २००० मील लम्बी हैं। आपसी संदिग्ध वातावरण के कारण भारत को अपनी सेनायें आत्मरक्षार्थ इन सीमाओं पर रखना पड़ रहा है। इतिहास में ऐसा ही विपर्य राजा रणजीत सिंह जी के साथ था। जब कि लाल रंग, जो कि १८ वीं व १९ वीं सदी तक गुलामी का प्रतीक था, तेजी के साथ दक्षिण से व पूरब-पश्चिम के घाटों से भारत के सम्पूर्ण क्षेत्र पर फैल रहा था और जिसके फैलाव को सिख राजा ने अपनी दूरदर्शिता से भाँप लिया था तथापि उसके रोकने में प्रभावशाली कदम न उठाये जा सके थे। काबुल की अनबन से राजा रणजीत सिंह को अपने उत्तम कोटि की सैनिक शक्ति को पेशावर के समीप पहाड़ों की रक्षा के लिए रखना पड़ा था। बुद्धिमान राजा भी अपनी प्रतिभा को सिख साम्राज्य के स्थापित्व में वैज्ञानिक परिवर्तनों के अनुरूप लगा न सका। इस वैज्ञनिक परिवर्तन के संकेत को स्वयं यूरोपियों ने संसार को दिया था। इस परिवर्तन में समुद्रीय तट व समुद्रों की लहरों पर उछलती हुयी नौ-सेना की अनिवार्यता थी। जिस तरह का तोपखाना व स्फूर्ति तथा शक्तियुक्त घुड़सवार व पैदल सेना राजा रणजीत सिंह के पास थी, यदि उसमें नौ-सेना का सहयोग प्राप्त हो गया होता तो इतिहास में सिख-साम्राज्य का

वर्णन दूसरे ही रूप में होता। 'टिलसिट' की संधि से अंग्रेज सतर्क थे। रूस व फ्रांस का भय अंग्रेजों को सताने लगा था। इसके साथ ही साथ अंग्रेजों ने सिंध नदी की उपयोगिता को सैनिक व व्यापारिक आधारों से अच्छी प्रकार समझ लिया था। यह समय पश्चिमोत्तर प्रदेशों के प्रति नीति नियामक कदम का प्रारम्भ था। कर्नल पोटिंजर के भेजकर अंग्रेजों ने सिंध के अमीरों को अपने वश में कर लिया था। अमृतसर की संधि से सिख राज्य का विस्तार सतलज की धाराओं तक सीमाबद्ध हो गया। इस प्रकार सिख साम्राज्य भूमि खंडों से ही बँध गया। समुद्र तक इसका विस्तार न हो सका था। कई कारणों में से जिसमें सिख साम्राज्य के पतन का वर्णन रहता है, उनमें से यह एक महत्वपूर्ण कारण था कि राजा रणजीत सिंह को सेना को पहाड़ों की तरफ न लगाकर समुद्र के तरफ बढ़ाना चाहिये था और राजा ने ये कदम उठाये भी थे परन्तु, अवसर काफी पीछे छूट चुका था।

इसी प्रकार आज इस उपमहाद्वीप पर "पीले रंग" का संकट उत्तर व उत्तर पूर्व से आ रहा है। विश्व भर की स्वतंत्रता प्रेमी जनता इससे अवगत है परन्तु पाकिस्तान की विचारधारा अस्पष्ट ही है। बाध्य होकर भारत को अपनी सीमाओं की रक्षा करनी पड़ रही है। भारत को रक्षा उन देशों से करनी पड़ रही है जो अभी कल तक हमारा भाई था और है और कल ही तक दूसरा हमारा मित्र था। भारत ने पाकिस्तान के साथ सदाशयता का अनोखा कीर्तिमान खड़ा किया है। पाकिस्तान को १६ जनवरी १९४८ ई० को ५५ करोड़ रूपये का एक तरफाभुगतान भारत ने किया। यद्यपि विभाजन ऋण जो कि भारत का पाकिस्तान के ऊपर निर्धारित है, उसकी संख्या ३०० करोड़ रुपयों की है। १५० करोड़ रुपये की मांग पाकिस्तान की भी भारत के प्रति है। जिसमें भारत ने उदारता पूर्वक जिम्मेदारियों के निर्वाह के लिये कई कदम उठाया भी है। १.५ करोड़ हिन्दुओं को जो पाकिस्तान के

नागरिक हैं भारत ने अपने यहाँ बसाया। भारत का लगभग ६०० करोड़ रूपयों की निकासी पाकिस्तान के ऊपर शेष ही है। जिन हिन्दुओं ने पाकिस्तान से भाग कर यहाँ पर शरण लिया है उन सबका संचित कोष व मकानों का यह रमक न्यूनतम मूल्यांकन है। ऐसा ही मूल्यांकन पाकिस्तान का भी भारत के ऊपर है। यह रमक १०० करोड़ रुपये की है। पाकिस्तान अदायगी के प्रति दिलचस्पी को प्रकट नहीं कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में यह एक उलझन पूर्ण अध्याय है। इसी प्रकार का व्यवहार भारत ने पाकिस्तान के साथ "सिन्धु-नद" के प्रश्न पर किया है। रावी, व्यास और सतलज के जल को लेकर भारत ने सिंध, झेलम और चिनाव के जल को पाकिस्तान को दे दिया। भारत स्वयं सिंध नदी के पानी पर अपना प्रतिशत हक २० प्रतिशत तक ही रखा है। इसके अतिरिक्त ८३ करोड़ रुपये की सहायता भी पाकिस्तान ने भारत के तरफ से प्राप्त किया है। इस रुपये से पाकिस्तान परिवर्तित धारायों व नहरों का निर्माण करेगा तथा विभक्त नदियों एवं जलों को धारा में वर्णित शर्तों के अनुसार उपयोग करेगा। इस संधि की उदारता को छाप स्वयं "विश्व बैंक" व उसके तत्कालीन अध्यक्ष यूजी ब्लैक पर हुयी। भारत इस प्रश्न पर राजनीतिक हथकंडों को सुविधा पूर्वक अपना सकता था। परन्तु भारत ऐसे कृत्यों का अभ्यस्त नहीं है और कथनी तथा करनी की एकरूपता पर उसकी आस्था है। भारत के समक्ष विलोचिस्तान के कृषकों का खेत व गरीब परिवारों का दृश्य था। यदि भारत सिंध नदी के धारा को परिवर्तित करता तो बिना बम वर्षा के ही पश्चिमी पाकिस्तान रेगिस्तान हो जाता। यह विशेषतः भारत सरीखे सभ्य राष्ट्र के कल्पना में भी न आने वाली बात है। परन्तु, पाकिस्तानी शासक भारतीय प्रयत्नों की गहराई युक्त भाई चारे

की भावना को समझ नहीं सके हैं।

भारत ने कभी भी उत्तेजनात्मक कार्य पाकिस्तान के प्रति नहीं किया है। खोयी हुयी संपत्ति व जवाहिरातों के सवाल पर भारत ने सर्वदा उन रेकार्डों को उपस्थिति किया है जिसे अविभाजित भारत में हिन्दू व मुसलमान तथा अंग्रेजों ने नागरिक प्रशासन के समय लिपिबद्ध किया था। परन्तु, पाकिस्तान कुछ स्वीकार करने की मनोदशा में है ही नहीं। यदि स्वीकार करता है तो उसका पालन नहीं होता है। इसी प्रकार भारत ने 'रेल-मार्ग' देने का प्रस्ताव उदारता पूर्वक सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार कर लिया था। दोनों पक्षों को इसमें सहूलियत है। व्यापारिक, सांस्कृतिक व नागरिक आवागमन के प्रति भारत ने उदारता का परिचय पाकिस्तान के साथ दिया है। इन सम्बन्धों के बावजूद पाकिस्तान का झुकाव भारत के साथ सहयोगात्मक नहीं है। पाकिस्तान आज भी ३३ हजार वर्गमील भूमि को दबाये बैठा है। कश्मीर का एक तिहाई भाग उसके अवैध कब्जे में है। बेरुवारी व अन्य जगहों को अपने झंझट पूर्ण अधिकार में करता चला जा रहा है। उसकी कश्मीर की माँग अर्थशास्त्र के "माँग व पूर्ति" की तरह है। मुख्य रूप से जबसे इस आधुनिक विश्व ने उधार पद्धति का मार्ग पिछड़े हुये राष्ट्रों को दर्शाया है तब से किसी भी देश के संप्रभु भूभागों की माँग निर्लज्जता पूर्वक बढ़ती जा रही है। इन मांगों में तर्क यह दिया जाता है कि अमुक संबंधित जाति की बहुलता उस प्रदेश में है। अतः उसके विकास की जिम्मेदारी उन जातिधारियों पर है! यह एक विचित्र समीकरण है। इन माँगने वालों की निगाह में राष्ट्र "वस्तु" के समान है। सिर्फ माँग करने से वस्तु के समान उसका पलटा होता रहता है। दूसरी बात पाकिस्तानी नेतायों के दिमाग में यह है कि जिन स्थानों पर पाकिस्तान निर्माण या उसके पूर्व कभी वे या पूर्ववर्ती नेतागण भाषण दिये

थे या सामाजिक समारोहों में सम्मिलित हुये थे, वह सम्पूर्ण सभास्थल व उससे सम्बन्धि क्षेत्र पाकिस्तान को मिल जाना चाहिये।" इससे एक कदम आगे वे बढ़ते हैं। उनके अनुसार "१९४६ व ४७ में जहाँ-जहाँ पर धर्मांधों ने विपक्षियों को बड़ी संख्या में वध करने में सफलता पाया था वह क्षेत्र पाकिस्तान को मिलना चाहिये। क्योंकि जनगणना के पद्धति में कत्ल व दंगा को शामिल कर लेना चाहिये। यह एक प्रत्यक्ष निर्वाचन है।"

इसी कारण जब कश्मीर में बहुल संख्या मुसलमानों की होने के बावजूद भी दंगा न हो सका तो कबाइलियों को भेजकर दंगा रूपी निर्वाचन पाकिस्तानियों द्वारा पूरा कराया गया। शायद, कश्मीर विश्व का वह प्रथम स्थान है जहाँ पर मनुष्यों का दिल व दिमाग पूर्णरूपेण भ्रातृत्व से भरा पड़ा है। हिन्दू व मुसलमान एक दूसरे के इतने निकट हैं कि विभाजन की रेखा अस्पष्ट हो जाती है।

जितनी भव्यता इस धरती के जड़ संसार को है उतनी ही भव्यता इसके चेतना युक्त प्राणियों की है। प्रकृति उन्नत मस्तक से आकाश को छूती है। धरती व क्षितिज का यह मिलन स्थल है। इसी प्रकार यहाँ के मनुष्यों का हृदय सम्पूर्ण भेदभावों को छोड़कर मानवता पर स्थापित हुआ है। इसे देवोपम भूमि भी कहते हैं। यह घाटी साक्षात धरती का स्वर्ग है। सहस्त्रों वर्ष पूर्व पाणिनी के समान विद्वान को इस धरती ने पैदा किया था। पाणिनी ने प्रथम बार अहिंसा के सूत्र की व्याख्या को प्रकट किया था। उसी मंत्र को बापू के उत्तराधिकारी तथा विश्व पूज्य नेहरू ढोये चले जा रहे हैं। नेहरू के पितृत्व की यह भूमि है। श्रीबख्शी गुलाम मुहम्मद के समान देशभक्त व द्वापर के कर्ण के समान दानवीर महाराज कर्ण सिंह के नेतृत्व में यह घाटी

पुष्पित व पल्लवित हो रही है। यह स्थिति पाकिस्तान के समक्ष में स्पष्ट हो जानी चाहिये। राष्ट्रों का निर्माण व बँटवारा इसी अर्थ में भिन्न है जैसा कि धर्म व रंग के आधार पर प्रश्न पाकिस्तान शनैः-शनैः उठाता रहता है।

इसी प्रकार की असंगत व असभ्य माँग को चीनियों ने नेफा व लद्दाख के इलाकों में रहने वाली जातियों के ऊपर किया है। स्वतः तिब्बत पर चीनियों का बल प्रयोग जबरदस्ती की ही कहानी है। यदि कभी भी इतिहास में चीनियों ने तिब्बत पर अधिकार कर रखा था या आक्रांत किया था तो इसका अर्थ नहीं कि तिब्बतियों की स्वतंत्रता सर्वदा के लिये विलुप्त हो गयी थी। लेनिन ने भी कहा था कि गुलाम होने से मनुष्यों के मौलिक अधिकारों का अपहरण नहीं हो जाता है। जेफर्सन की भी ऐसी ही मान्यता थी। इस प्रसंग में चीनी संप्रभुता तिब्बत पर ही न्यायसंगत नहीं हो पाती है। फिर, गोलचेहरों के नाम पर नेफा व लद्दाख की जनता को चीनी गणराज्य के अन्दर बतलाना सभ्यता पर हंसी करना है। इनकी मांगे वही उधार पद्धति के राष्ट्र के कल्पना की है। इससे स्पष्ट है कि इनके भी दिमाग में राष्ट्र व राज्य की कल्पना पाकिस्तानियों के ही समान संदिग्ध व अस्पष्ट है। यह एक महान कठिनाई भारत के साथ है। भारत के पड़ोसी राष्ट्र व राज्य अभी को परिभाषाओं से भी अपने को परिचित नहीं करा सके हैं। यह भारत के स्वस्थ्य विकास की दिशा में उपस्थित प्रथम संकट है। इसके बावजूद भारत ने भी अपने प्रयासों तथा मित्रोचित व्यवहारों व पड़ोसी धर्म के निर्वाह में शिथिलता नहीं आने दिया। चीन के साथ जिस व्यवहार को भारत ने प्रदर्शित किया है उसे भावी इंसान इतिहास में पढ़कर मुश्किल से विश्वास कर सकेगा। क्योंकि राष्ट्रों के बीच सम्बन्धों का इतना

अधिक एकतरफा उदार व्यवहार का उदाहरण अन्यत्र संभव नहीं है। परन्तु, भारत अभी भी मित्रोचित प्रतिकार का ही आकांक्षी है। इन सभी प्रयत्नों में भारत को महगी कीमत चुकानी पड़ती है। कीमत का मापदंड जब आपसी आधार व लेन-देन के बाहर बढ़ता है तो परिस्थितियाँ अत्यधिक उलझ जाती हैं। भारत अपने व्रत को झेले जा रहा है। इस पड़ोसी धर्म का व्यवहार एशिया के लिए यद्यपि नया है तथापि आदर्श इस धरती के अनुरूप ही है। यूरोप के राष्ट्रों को अपनी सीमाओं पर इतना अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फ्रांस व जर्मनी की शत्रुता दो महान विश्व युद्धों का कारण रह चुकी है। फिर भी दोनों देशों की सीमाओं पर सैनिक जमाव नहीं ही रहता है। यही स्थिति इटली व अन्य पश्चिमी राज्यों की भी है। इस व्यवस्था से उन देशों में अच्छे संबंध का विकास होता है। लोगों को एक दूसरे के साथ संपर्क बढ़ाने में मदद मिलती है। इससे आर्थिक सहकार का मार्ग प्रशस्त होता है। यूरोपीय संयुक्त हाट व्यवस्था इसका उदाहरण है। यही कारण है कि यूरोपीय श्रेष्ठता एशिया के मुकाबिले कायम रहती है। लेकिन इन सबके जड़ में जो सिद्धान्त व व्यवहार कायरत है वह सिर्फ सहयोग, समझदारी तथा पड़ोसी राष्ट्र के प्रति अच्छे आचरणों का ही फल है। क्या एशिया के राष्ट्र इस सिद्धान्त को व्यवहार रूप दे सकेंगे? आज यही प्रश्न उपस्थित है।

रियासतों का एकीकरण

१६४७ ई० से एशिया में जो ऐतिहासिक प्रक्रिया का विकास हुआ उसमें धनात्मक व ऋणात्मक दो पहलुओं का क्रम मुख्य रहा है। धनात्मक नीतियाँ राष्ट्र के अन्दर गतिशील थीं। ब्रिटिश भारत तीन खंडों में बिभक्त हुआ था। एक भारतीय जनतंत्र दूसरा पाकिस्तान तथा तीसरा देशी राज्य थे। भारत वर्ष के क्षेत्रफल का

२/५ भाग में देशी राज्य फैले थे। । इन राज्यों की संख्या ५६३ के लगभग थी। इस प्रकार ब्रिटिश भारत १५ अगस्त १९४७ ई० को ५६५ की संख्या में विभक्त हो गया। भारतीय जनतंत्र के समक्ष समस्या थी। यह समस्या राष्ट्रीय एकीकरण की थी। ऐसी ही समस्या जर्मनी में बिस्मार्क के समय उठी थी। प्रश्न था कि भारतीय नरेशों का स्वरूप क्या तय किया जाय? भारत अपना मार्ग जनतंत्र का घोषित कर चुका था। जो लोग श्री जवाहरलाल नेहरू को १९४७ ई० से पूर्व जानते थे वे इस प्रश्न पर स्पष्ट थे कि नियोजन व समाजवादी समाज रचना का ही लक्ष्य वे तय करेंगे। परन्तु, इसमें लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल के सूझ-बूझ ने ही देशी राज्यों को भारतीय जनतंत्र में मिलाया। यह घटना स्वतंत्र भारत की बेजोड़ उपलब्धि है। स्पष्टरूप से इस घटना के कारण भारतीय नेताओं की सूझ-बूझ का अधिकांश भाग गृह-नीति में लगाना पड़ा। स्वतंत्र भारत में उसका ही २/५ भाग वाला देशी राज्यों का भारत आकार मिला। १/५ आबादी शेष भारत की आबादी से संयुक्त हो सकी। इसके अलावा यूरोपियनों ने महसूस किया कि बिस्मार्क का जन्म एशिया में भी हो सकता है। इस प्रकार से देशी राज्यों का एकीकरण भारत के हित के लिये हुआ। परन्तु, भारतीय सीमाओं के सूक्ष्म हलचल इस महत्वपूर्ण हलचल से फीके पड़ गये। भारत की सीमाओं पर जो चतुर्दिक ऐतिहासिक प्रक्रिया घट रही थी वह ऋणात्मक सकेंत का अंग थी।

धनात्मक प्रक्रिया से उत्पन्न समस्याओं को सुलझाने में ही ऋणात्मक समस्याओं का विस्मरण १९४७ ई० से १९५० ई० की अवधि तक हुआ। परन्तु, कोई भी राष्ट्र या राष्ट्रनायक गतिशील परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं कर सकता है। यदि उपेक्षा की भी गयी तो परिस्थियाँ स्वयं उपेक्षा नहीं करेगीं। अब तक के भौतिक व आधिभौतिक सम्पूर्ण

क्रियायों में मनुष्यों को उसकी अध्ययन करने की क्षमता तथा तदुनुकूल हो जाने की शक्ति के ही कारण प्रकृति पर तथाकथित विजय प्राप्त हुयी है। इसी अर्थ में ऐतिहासिक परिस्थितियों का सृजन होता रहता है। जब कभी तथा जहाँ कहीं वैज्ञानिक, राजनैतिक तथा सामाजिक विचार धाराओं का नया अंग प्रकट होता है, उसी क्षण परिवर्तन की बदली हुयी परिस्थिति प्रकट हो जाती है। भारत के अन्दर व बाहर के साथ-साथ एशियाई राष्ट्रों के अन्दर व बाहर धनात्मक व ऋणात्मक परिस्थितियों का सृजन हुआ है। यह भारत की कठिनाई नहीं अपितु इसकी परिस्थिति है। आधुनिक राष्ट्र के रूप में भारत विकास चाहता है। परन्तु, उसके चतुर्दिक "स्वतंत्र छूट व्यापार" के समान अन्य राष्ट्र भी आधुनिक बन रहे हैं। निर्माण की विधियों का अन्तर अवश्य प्रत्येक में है। कपट व शत्रुता को ही चीन राष्ट्र नीतियों का अंग मानता है। युद्ध को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों के लिये आवश्यक तथा प्रथम व अंत तक का अस्त्र समझता है।

लेनिन के बताये हुये मार्ग पर चलने का दंभ भरने वाले चीन ने सत्ता अवशेष निमित्त (वीदर अवे) जोर से बन्दूक को पकड़ने का मार्ग अपनाया है। इसके अतिरिक्त जो भी भूमि कभी भी चीनियों के साम्राज्यवाद में पड़ चुकी है उसे स्वतन्त्र राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय होने या रहने की छूट इनकी मान्यता में नहीं है। इस स्थल पर स्वयं चीनी नेता लेनिन महान से दूर हैं। क्योंकि लेनिन के अनुसार, परतंत्र होने के लिए सर्वदा का बन्द रास्ता नहीं है।

राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय नीतिमूलक पहलू

इसके अलावा वैदेशिक नीतियों में हमारे राष्ट्र के नेता ऐसा महसूस करने लग गये थे कि साम्यवादी राज्य दूसरे राज्यों को आक्रान्त नहीं करते हैं। इस विचारधारा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। साम्यवादी साहित्यों की सुगमता ने इस विचार-धारा को बल दिया। इस विचारधारा ने भारत सरकार को अपनी सीमांत नीतियों के तय करने में विशेष प्रभावित किया। अंग्रेजों ने डूरंड पाँत तथा मैकमहोन रेखा स्थापित करके उत्तर-पश्चिमी व उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों को सुरक्षित किया था। इसके अलावा अफगानिस्तान व तिब्बत में मित्रोचित संधि द्वारा अपने विशेष हितों का संरक्षण कर रखा था। इन व्यवस्थाओं के अलावा भी वे सर्वदा शंकित रहते थे। इससे सतर्कता रहती थी। सतर्कता अंग्रेजों के लिये स्वतंत्रता को ही देन नहीं अपितु साम्राज्यवादी हितों की भी देन सिद्ध हुई। इस प्रकार ब्रिटिश भारत रक्षित था। परन्तु इस तथ्य के अलावा कुछ और भी था। अंग्रेजों के समय ऋणात्मक व धनात्मक ऐतिहासिक परिस्थितियाँ नहीं थीं।

भारत के नेताओं ने बदलती हुई परिस्थितियों में अपनी नीति को स्थापित किया। इन बदलती हुई परिस्थितियों में भारतीय नेताओं ने अफगान युद्ध व बर्मा युद्ध तथा गोरखा युद्धों का पूरा ब्यौरा अपने सामने रखा। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री ईश्वरी प्रसाद ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि अफगानों के छेड़ने से ब्रिटिश भारत सरकार को कुछ भी प्राप्त न हुआ। उसके रूप में बैर; अपयश तथा प्रत्यावर्तन ही प्राप्त हुआ। इसी आधार पर भारतीय नेताओं ने तिब्बत

तथा चीन के प्रश्न को १६५४ ई० में संतुलित करने का प्रयत्न किया। परन्तु, वह स्थिति इस कारण भी कायम न रह सकी, क्योंकि तिब्बत का सामाजिक ढांचा साम्यवादी चीन के प्रयोगों से प्रभावित हो चुका था। तिब्बत का लामा राज्य अपनी विचित्रताओं के साथ अपनी परम्परा इस युग में ढोये चला जा रहा था। चीन के अन्दर एक भयानक प्रक्रिया सामाजिक स्तर पर घट रही थी। तिब्बत में संस्थाओं की ही अहमियत थी। जब कि ये सस्थायें ईसा पूर्व से चली आ रही थीं। इमका आपसी सम्बन्ध ढीला ढाला व बिखरा हुआ सा था। इसे मठ कहते हैं। परिवर्तन की गति से दूर तिब्बत सिर्फ न्याय के आधार पर कायम रहना चाहता था। इसके विपरीत तिब्बत को यह भी पता न था कि न्याय प्राप्ति शक्ति सन्नधता तथा सामाजिक व्यवस्था से ही प्राप्त होती है। संधियों तथा विदेशी शक्तियों का सहयोग पूर्णनियामक न होकर पहलू के समान एकांगी होता है। भारत ने विश्वास कर लिया था कि तिब्बत की गृह नीति में चीन अपने वचन के अनुसार हस्तक्षेप न करेगा तथा तिब्बत समय के साथ सामाजिक परिवर्तन पूर्ण कर लेगा। परन्तु चीन ने तिब्बत को मौका न देकर स्वयं उसमें परिवर्तन कर बैठा। परन्तु, चीन ने तिब्बत में 'कम्यून' के प्रयोग को प्रारंभ कर दिया। वहाँ के परिवारों का मूलोच्छेद किया गया तथा तिब्बती पुरुषों को चीनी महिला तथा चीनी पुरुषों से तिब्बती महिलाओं का विवाह कराया गया। स्पष्ट रूप से इस व्यवस्था का विरोध हुआ और विरोध को दबाने के लिए पेकिंग सरकार ने दलाईलामा से मदद मांगी। मदद न देने की अपनी धर्मोचित विचार-धारा से दलाईलामा ने भारत में शरण ले रखा था। भारत १६५४ ई० की चीन भारत संधि की अंतिम धारा को चरितार्थ करने लगा। क्योंकि जब कभी दो सबल पक्ष एक निर्बल पक्ष के प्रश्न पर आपसी समझौता करते हैं तथा उक्त समझौता की न चरितार्थता में

यायिक सबल पक्ष निर्बल पक्ष के प्रति अपने दिये गये बचनों के अनुसार व्यवहार करता है। यही भारतीय स्थिति है उसके तिब्बत संबन्धी व्यवहार की।

परन्तु, साम्यवादी राज्य भी आक्रमण करते हैं ऐसी स्थिति को चीन ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है। भारत के विश्वास को धक्का लगा है। भारत ने इन विश्वासों का आधार इतिहास से बना रखा था। आधुनिक समय में भारत ने सोचा कि साम्यवादी विचार धारा तथा ढाई सहस्त्र वर्ष की मित्रता ही सीमा रेखा का काम करेगी। इस कारण भारत सरकार ने सैनिक तैयारियों का मार्ग नहीं अपना रखा था।

इसी क्रम में यह भी विचारणीय है कि भारतीय नेता भारत के स्वरूप से कुछ उहापोह की स्थिति में थे। साम्यवादी चीन अपने विस्तार को वही नहीं मान लेता है जो कि उसके अधिकार में है। वह कुबला खां, मिहिरकुल तथा शुंग इत्यादि वंशकुलों के विस्तार से वर्त्तमान क्षेत्र को समझता है। भारतीय लोगों ने भारत का काल विभाजन ही नहीं किया था परन्तु क्षेत्रीय विभाजन भी स्वीकार कर लिया। भारत को राजा महाराजों का भारत, गुलाम भारत, मुगल भारत, अंग्रेज भारत, इत्यादि रूपों से याद किया जाता है। इस प्रकार का काल विभाजन अध्ययन के लिये ठीक है। परन्तु ऐसी विचारधारा आधुनिक युग में क्षेत्रों पर हक के लिए संवैधानिक प्रश्न स्वतः पैदा कर देती है। भारत को काल खंडों में सोचने से क्षेत्रीय खंडों का नकशा सामने आ जाता है। यह मानसिक कच्चेपन की भ्रामक स्थिति है। चीनी नेता यद्यपि इस अर्थ में अति के रूप पर हैं। उनकी राष्ट्रीय कल्पना उस क्षेत्र से भी है जहाँ पर विदेश स्थित चीनी दम्पति रहते हैं।

कल्याणकारी राज्य की स्थापना का प्रयास

भारत ने अपने देश में अणु शक्ति तक का उपयोग ईंधन के रूप में करने का निश्चय किया है। भारत ने तारापुर में अणु शक्ति विद्युत गृह स्थापना किया है। तीसरा विद्युतगृह (अणु चलित) मद्रास के कल्पक्कम् स्थान पर बैठाया गया है। आइसोटोप्स के उत्पादन में भारत विश्व में प्रथम है। अणु शक्ति का शांतिमय प्रयोग भारत की नीति है।

इसके अलावा सामाजिक व शैक्षणिक कार्यों में भारत ने अपने समय को लगाया है। कथनी के अनुसार भारत शांतिपूर्ण रहा है और और सहअस्तित्व को यथार्थ में स्वीकार किए हुए है। निःशस्त्रीकरण तथा शांति प्रस्ताव व प्रयत्नों से भारत ने विश्व के भाग्य को चमकाया है। विश्व की अधिकांश जनता भारत को आशा के साथ देखती है। भारत ने बुलेट के मुकाबिले बिस्कुट को वरीयता प्रदान किया। जंग से टूटे हुए समाजों व राज्यों को भारत ने अपनी नीति से पुनः जीवन प्रदान किया है। प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। इन ऊँचे आदर्शों के ऊँचे मूल्यों के भुगतान का।

भारत ने दो पंचवर्षीय योजनाओं को पूरा किया। परंपरागत समाज के गतिहीन आर्थिक ढाँचे को स्वयं स्फूर्ति की स्थिति लाने में योजनाओं ने मार्ग प्रशस्त किया। सहस्त्रों वर्ष के शोषण ने देश को अस्त व्यस्त कर रखा था। सिकन्दर महान का आक्रमण ३३० ई० पू० हुआ था। उस समय से १५ अगस्त १९४७ ई० तक भारत की सम्पन्नता विदेशी यहाँ से ढोए जा रहे थे। इतने लम्बे काल तक देश का आर्थिक दोहन हुआ। यद्यपि बीच बीच में यह क्रिया ठप थी तथापि लगभग आर्थिक व्रण कायम ही रहा। ऐसे देश व समाज में नियोजन की क्रिया अल्प काल से प्रारंभ हुई है।

शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक कल्याण तथा विश्व के सबसे बड़े

जनतंत्र व चुनाव पद्धति के निर्वाह प्रयोगों इत्यादि कई मोर्चों पर भारत ने ऐतिहासिक कीर्तिमान को कायम किया है।

इन सभी अंगों से भारत ने जनता को खुशहाली व जनता का राज्य कायम करने के लिये अपने साधनों को व्यवहृत किया। पूंजीवादी व साम्यवादी देशों ने सहकार व सहअस्तित्व के आधार पर भारतीय प्रयत्नों में मदद दिया। भारत इस धरती के आदर्श राज्य के रूप में बढ़ने लगा। प्रसिद्ध रूसी चित्रकार रोरिक व विश्व प्रसिद्ध ब्रिटिश वनस्पति शास्त्री प्रोफेसर जे० एस० हाल्डेन ने भारत को स्थाई रूप से अपना निवास स्थान बना लिया है। अणु युग के निर्माता प्रो० आइंसटीन ने भी भारत में ही रहने की अपनी इच्छा को प्रकट किया था। स्पष्टतः इन तत्वदर्शियों ने भारत के सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक विकास से प्रभावित होकर इसके उज्जवल भविष्य में अपनी आस्थाओं को प्रकट किया था। इसका मनोवैज्ञानिक असर संसार व भारत पर पड़ा है। इसके अलावा भारत ने शांति प्रयत्नों से बापू के नेतृत्व में अपनी आजादी को पाया है। शांति प्राप्ति व प्रयत्न में भारत ने अपनी निष्टा को इसी कारण स्थायी बनाए रक्खा। भारत सामरिक तैयारियों में इसी कारण प्रयत्न न कर सका। पहल करना तो दूर की बात रही।

अंग्रेजों तथा ग्रीकों ने भारत पर विभिन्न भागों से आक्रमण किया। जल व थल का भी भेद इन आक्रमणों में निहित है।

भाषा समस्या

सिकन्दर महान के आक्रमण से भारत पर तत्कालिक प्रभाव राज्य व्यवस्थापक के रूप में पड़ा। पहले भारत छोटे-छोटे राज्यों में बंटा था। आक्रमण ने भारतीय विचारकों का आंख खोल दिया। कौटिल्य इत्यादि राष्ट्रीय नेताओं ने साधनयुक्त विशाल राज्य की स्थापना किया। आक्रमण का दूसरा प्रभाव यह हुआ कि भारत यूरोप के संपर्क में आया। उस समय ग्रीकों के जल्द प्रत्यावर्तन

[illegible] जनमानस में भाषाई समस्या उत्पन्न न हो सकी। गजनी [illegible] गोरी के बाद भारत में गुलामवंश की स्थापना हुई। इसके बाद अनेक कई आक्रमणकारी आये। भारत में इन सभी के बस जाने से [illegible] भाषा का सवाल पैदा हुआ। पहले समय में शासक की भाषा ही राज्य भाषा होती थी। परन्तु, जब अंग्रेजों ने सत्ता सौंपने का ऐतिहासिक निर्णय लिया और भारतवर्ष का बँटवारा हुआ, उसी समय से भाषा का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। भाषाई समस्या की जटिलता को देखकर संविधान-निर्माताओं ने १४ भाषाओं को राज्यभाषा घोषित किया। परन्तु, प्रश्न अब भी राष्ट्र के संमुख है। दक्षिण भारत, पंजाब आसाम इत्यादि जगहों पर इस प्रश्न ने काफी झंझट को खड़ा किया। राष्ट्रीय एकीकरण परिषद तथा भावात्मक एकता समिति के माध्यम से इस समस्या का समाधान ढूढ़ा जा रहा है।

आक्रमण व शांति के समय भी रक्षार्थ रणनीति

भारत ने संसद के प्रस्ताव द्वारा घोषित कर रखा है कि अणु-शक्ति का प्रयोग शांति मय कार्य के लिये ही किया जायगा। इसी कारण आक्रमण के समय भी भारत ने सिर्फ रक्षार्थ रणनीति को अपना रखा है। चीनी आक्रमण के मोर्चों पर भारतीय सेना को दुहरी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। चीनी सैनिकों के निरंतर आक्रमण के बावजूद भारतीय सैनिक सिर्फ प्रतिरोध ही करते हैं। इसके अतिरिक्त सीमा पर गश्त देने का कार्य करते हैं। प्रत्याक्रमण भी सिर्फ प्रतिरोधात्मक ही होता है। इस प्रकार भारतीय सेना चीनी सेना की गलतियों का फायदा नहीं उठा पाती है। इसके विपरीत चीनी सेना निश्चिंतता पूर्वक सामरिक तैयारियाँ करती रहती है। अपने स्थान से ही लड़ने से भारतीय सेना आगे बढ़कर चीनियों के सैनिक ठिकानों पर आक्रमण नहीं कर पाती और न तो सामरिक महत्व के स्थानों को कब्जा में कर पाती है। मेजर जनरल परांजपे

ने लिखा है कि बराबर के राष्ट्रों में रक्षार्थ रणनीति आक्रांत देश के द्वारा अपनाने से उक्त देश की रक्षा असंभव हो जाती है। क्योंकि रक्षार्थ रणनीति को अपनाने वाले राष्ट्र को प्रतिपक्षी से बहुत प्रबल होना चाहिये।

भारत अब तक आर्थिक विकास में ही अपनी शक्ति को विनियोजित करता रहा है। लोक कल्याण के माध्यम से लोक राज्य की स्थापना भारत का लक्ष्य है। इस लक्ष्य के कुछ आधार भूत नीतियों को भारत ने अब तक पूरा किया है। जमींदारी-उन्मूलन देशी-राज्यों का विलीनीकरण, जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं का राज्य के अन्तर्गत उत्पादन और आर्थिक-विषमता का उन्मूलन प्रयास तथा पिछड़ी जातियों की सहायता की योजनायें एवं पंचवर्षीय योजनायें इन नीतियों के अंग है। भारत पूर्ण तन्मयता के साथ पंचायती राज्य की स्थापना एवं नियोजन के कार्यान्वय में व्यस्त था। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों में पंचायती सन्देश भारत का प्रयत्न रहा है। इस दिशा में कोरिया, वितनाम और कांगो तथा गाजा पट्टी में भारतीय सेनाओं की सेवायें वर्णन योग्य हैं। गृह नीति में भारत एक प्रकार से ऐसे इतिहास का निर्माण कर चुका था जिसमें न तो भारत कभी कहीं आक्रमण करेगा और न तो भारत के ऊपर ही साम्यवादी चीन आक्रमण कर सकता है। क्योंकि भारत को लेनिन के सिद्धान्त में—साम्यवादी राज्य आक्रमण करते ही नहीं हैं—गाँधीजी के अहिंसा वाले सिद्धान्त से भी ज्यादा व्यवहारिक सत्यता प्रतीत हुयी। भारत सैनिक सतर्कता रखता था तो सिर्फ पाकिस्तान से ही। यह उचित है। परन्तु, चुंगी के सैनिक चीनी सीमा के पास उपयुक्त नहीं थे। इस प्रकार शांति में रहने वाले भारत को हठात् चीनियों ने युद्ध में झोंक दिया। इसके अलावा अपनी तैयारीवश चीनियों ने कुछ प्रारम्भिक सफलता भी प्राप्त कर लिया। इनकी सफलता उन नाजियों की सफलता के समान है जो कि प्रथम

प्रहार में मास्को तक पहुँच गये थे। परन्तु, मित्र देशों की मदद और रूसी अदम्य पौरुष ने सोवियत भूमि में सिर्फ नाजियों के कब्र को ही रहने दिया। जिन्दे नाजी उस धरती पर नहीं टहल सके। यही स्थिति भारत-चीन प्रसंग में भी है।

"विश्व स्थिति एवं रूस-चीन सम्बन्ध"

ऐतिहासिक दृष्टिकोण

बीसवीं सदी के तीसरे दशक ने विश्व रंगमंच पर तीन महान् अन्तरराष्ट्रीय शक्तियों को खड़ा किया। ब्रितानिया महान् का साम्राज्य धरती के अधिकांश भूभागों में फैला था। वाणिज्य व प्राविधिक तरीकों के मदद से संयुक्तराज्य अमेरिका विश्व की प्रथम शक्ति के रूप में उठ रहा था। प्रथम महायुद्ध; तथा संघर्ष के क्षेत्र से लम्बी दूरी के कारण संयुक्तराज्य अमेरिका ने उत्पादन व मुनाफा के क्षेत्र में समय का भरपूर फायदा उठाया। इसी प्रकार १९१७ ई० से संस्थापित क्रांतिकारी सोवियत संघ ने इस शदी के तीसरे दशक से नियोजन के दर्शन को सशक्त रूप में गतिशील किया। संयुक्तराज्य अमेरिका ने अपनी अर्थनीति में 'नये पग' (न्यूडील) का प्रयोग इसी तीसरे दशक में किया। इसी प्रकार प्रथम महायुद्ध के उपरांत १९१९ ई० में आयोजित 'दी पेरिस कानफरेंस' ने विश्व के सम्मुख शांति संस्थापनार्थ चार बड़ी शक्तियों के स्थान पर तीन बड़ी शक्तियों की ही आवश्यकता को प्रकट किया। यह ऐतिहासिक संकेत था। इस संकेत का स्पस्ट स्वरूप १९३० ई० से प्रकट हुआ। ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ विश्व के रंग-मंच पर प्रकाशित हो रहे थे। परन्तु, रसायन विज्ञान व भौतिक शास्त्र तथा प्राविधिक रसायन की नयी खोजों ने समर प्रिय नाजियों को बलशाली बना दिया। ये धूमकेतु

के समान उठे और ऐसा प्रतीत हुआ कि सारा संसार तिमिराच्छन्न हो जायगा। लेकिन बीसवीं शदी के चौथे दशक के अर्धभाग ने स्वयं नाजियों के अस्तित्व को तिरोहित कर दिया। इस महायुद्ध ने विश्व को दो फाकों में बाँट दिया। ये दो भाग अमेरिकी प्रभाव व सोवियत संघ के प्रभाव से ज्ञात हैं। इन राष्ट्रों का प्रभाव इतना व्यापक हुआ कि सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा राजनैतिक विचार धाराओं में सोचने का तरीका भी अमेरिकी व रूसी मार्का होने लगा। गरीबो के नाश के तरीकों व प्रयत्नों में भी अमेरिकी तथा रूसी वृन्दों का प्रकटीकरण होने लगा। विश्व कभी भी इतना स्पष्ट नहीं बँटा था जितना कि १९४६ ई० से १९५५ ई० के मध्यकाल तक इस अवधि में सम्पूर्ण संसार अमेरिकी प्रभाव व विस्तार के साथ-साथ रूसी प्रभाव व विस्तार में सिमिटता जा रहा था। कशमकश की स्थिति थी। वैसे आज भी है। द्वितीय विश्व युद्ध ने ब्रिटेन को झकझोर दिया था। जर्मनी की रीढ़ टूट चुकी थी। एशिया का उगता हुआ सूर्य, जापान अणुबम के प्रहार से विनाश के बादलों से ढंक चुका था। एक बार पुनः विश्व नेतृत्व की एशियाई आशा नष्ट हो गयी। १९०५ ई० में जापान द्वारा अर्जित प्रतिष्ठा हिरोशिमा के कब्र में विलुप्त हो गयी। इतिहास ने नया डग लिया। विश्व रंग मंच का केन्द्र बिन्दु लंदन अब न रहकर न्यूयार्क तथा मास्को के हाथ में आ गया। एशिया व अफ्रीका में इस विनाश के बाद राष्ट्रीयता ने उग्र रूप ग्रहण किया। जनता ने अंगड़ाई लिया। स्वाधीनता व स्वतंत्रता की वेला नजदीक आयी। परन्तु, प्रकृति ने विश्व क्षितिज के लिये कुछ निर्देशांक बना डाले। ये ही निर्देशांक आगामी कदमों को संचालित किये हुये हैं। इनके संचालित होने के लिये युद्ध के अलावा अन्य परिस्थितियाँ भी हैं।

इस शताब्दी के चौथे दशक के प्रारम्भ में वैज्ञानिकों ने प्रकृति के

वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

लघुतम स्वरूप "अणु" का अध्ययन किया। अध्ययन ही नहीं बल्कि उसको खंडवत भी किया। इससे भीषण शक्ति मुक्ति हुयी। २ दिसम्बर १६४२ ई० को यह सफल घटना है। इस घटना ने महायुद्ध के भाग्य को बदल दिया। साथ ही साथ संसार के स्वरूप को प्रभावित किया। प्रकृति की जानकारी मनुष्य को विकसित अवस्था में प्राप्त हुयी। जड़ व चेतन की दिशा में खोज प्रयास का यह उल्लेखनीय कदम है। इस जानकारी से पदार्थों का शक्ति लहरों में परिवर्तित होने की क्रिया का ज्ञान प्राप्त हुआ। इस घटना ने दूरगामी प्रभाव भौतिक जगत की उपलब्धियों के बारे में समाज को दिया। इससे मनुष्यों की पहुँच अणु से लेकर आकाश तक हुयी। परन्तु, अणु के टूटने से प्रकृति की यह क्रिया सिर्फ जड़ तक ही सीमित न रह सकी। इसका प्रभाव मनुष्यों के मन पर भी पड़ा। लोगों के दिल पहले से अधिक दूरी पर हो गये। मन का बँटवारा हो गया। कण के टूटने से ऐसा प्रतीत हुआ कि चेतना स्वरूप मन भी टूट गया। इससे राजनीतिक असर हुआ। दुनिया के नकशे पर बैठे हुए राष्ट्रों का स्वरूप इसी क्रिया की देन है। कोरिया, उत्तरी तथा दक्षिणी खंडों में बँट गया। वितनाम के तीन टुकड़े हुये। भारत दो भागों में बट गया। मिस्र व सूडान अलग हो गये। इसी प्रकार मिश्र व शाम का बंटवारा हो गया। जर्मनी भी दो खंडों में बंट गया। पूर्वी व पश्चिमी जर्मनी नाम पड़े। काँगो, कटाँगा का बँटवारा हुआ। मंगोलिया भी भीतरी तथा बाहरी आधार पर बँट गया। इन बँटवारों के अलावा विभाजन की यह क्रिया सतत गतिशील है। मजहब या मतों के आधार पर राष्ट्र बनाने की सुयोग स्थिति विश्व में इस शताब्दी के पूर्व अच्छी थी। परन्तु, धर्म व भाषा के आधार पर राष्ट्रों की माँग नहीं उठी थी। आज जब कि मानव अधिकार की रक्षा का आदर्श व व्यवहार भी उपस्थित है सिर्फ मजहब व

वर्ग के आधार परराष्ट्र बनाने की कल्पना तथा प्रयत्न टूटे हुए दिलोंवाले व्यक्तियों का कार्य है। यातायात व प्राविधिक सुविधाओं के विकास के बावजूद भी लोग धर्म व भाषागत राज्य की कल्पना में पड़े हुये हैं। यह स्थिति अविकसित राष्ट्रों में प्रर्याप्त मात्रा में है। इस समस्या के अध्ययन कर्त्ता लोगों का कथन है कि साधनों की कमी भी जातियता के सुदृढ़ीकरण का कारण है। स्पष्टतः अल्प आय के राष्ट्रों में प्रतिव्यक्ति आमदनी थोड़ी-सी है। इस कारण इन जगहों के लोग अपनी-अपनी सुरक्षा के लिए जातियता का केन्द्रीकरण करते हैं। एशिया व अफ्रीका में ऐसे प्रमाण प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। कांगों, कटांगा तथा अफ्रीका के अन्य राष्ट्र जो अपने पूर्वस्वरूप से खंडित हो रहे हैं; उनमें से इस कारण को समझा जा सकता है। यथार्थ में कबीला बाद का स्वरूप ही बँटवारे का मूल कारण है। परन्तु, जड़ जगत में जिस अणु-विभाजन ने नयी शक्तियों को पैदा किया है; उसी अणु-विभाजन का असर मानव समुदाय के चेतन, विभाजन के रूप में उपस्थित हुआ है।

इस बीसवीं सदी में मनोविज्ञान के नये खोज ने इस समस्या को स्पष्ट किया है। फ्रायड के अनुसार मनुष्यों का एक अचेतन मन का क्षेत्र होता है। चेतन क्षेत्र के कार्य फ्रायड के पूर्व मनोवैज्ञानिक जानते थे। परन्तु, वे अचेतन क्षेत्र की क्रियाओं से अपरिचित थे। इस कारण मनुष्यों के बहुत से क्रिया कलाप व्याख्याहीन हो जाते थे। भौतिक जगत में वैज्ञानिकों ने अणु क्षेत्र का अध्ययन किया। इस क्षेत्र की बारीकियों के जानने से प्रकृति की अन्य रहस्य व व्याख्यायें प्रकट हुयीं। मनुष्यों के अचेतन मन की दूरियाँ तथा जड़ जगत के अणु क्षेत्र की दूरियाँ एक दूसरे को जितना इस शताब्दी में प्रभावित की हैं, उतना अन्य समयों में नहीं।

यही कारण है कि आज मनुष्य अणु-शक्ति के द्वारा अणु से

आकाश तक की दूरी को पूरा करना चाहता है, परन्तु उससे एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य की आत्मगत दूरी की यात्रा पूरी नहीं हो पा रही है। इसीलिये पश्चिम व पूर्व में निरन्तर ध्वनि से तीव्र यान आ जा रहे हैं, परन्तु इन यानों पर चढ़ने वाले अपनी खाइयों को पाट नहीं सके हैं। इतना ही नहीं, अपितु एक ही क्षेत्र में रहने वाले लोगों में पहले से अब अधिक मतभेद वर्तमान है। पश्चिम व पूर्व तो नहीं मिल पा रहे हैं, परन्तु पूर्व व सुदुर पूर्व भी संघर्ष रत हैं। पुरानी दोस्ती तथा पुरानी सभ्यता और पूर्व के ही रहने वाले चीन तथा भारत में संघर्ष है। चीन ने इतना असभ्य व्यवहार किया कि भारत को जवाब देना पड़ रहा है। इसी प्रकार फ्रांस व यूरोप के सम्बन्ध को सोचा जा सकता है। फ्रांस अपनी गरिमा को कायम करना चाहता है। उसे एक ही समीकरण पर यूरोप के देशों के साथ अपने को रखने में कठिनाई का अनुभव होता है। पश्चिमी जर्मनी का सम्बन्ध यूरोप के देशों के साथ चर्चा का प्रश्न बन जाता है। पश्चिमी गोलार्ध में क्यूबा का रूख इस बात का संकेत है कि जल्द ही अन्य राष्ट्रों का भी मन विभक्त की स्थिति में आयेगा। इस मन विभक्त की स्थिति इस तरह गतिशील है कि साम्यावादी दर्शन भी अपने शिविर को फूट से नहीं बचा पा रहा है। जिस इटली से पोप के फरमान जारी होते थे और वे पूरे यूरोप तथा रूसी साम्राज्य में बिना परिवर्तन के स्वीकृत होते थे उसी इटली से विश्व साम्यवाद के अन्दरराष्ट्रीय तरीकों के एक रूपता के विपरीत राष्ट्रीय पथ का फरमान जारी होता है। आज का साम्यवादी शिविर इस नये मोड़ से अपने को परिचित करा रहा है। शांतिमय संघर्ष व सहअस्तित्व के मार्ग को सोवियत संघ ने घोषित कर रखा है। अलबानिया व चीन को छोड़कर शेष सभी साम्यवादी दलों को इटली कम्युनिस्ट कांग्रेस का प्रस्ताव पसन्द है। यही कारण है कि भारतीय साम्यवादी दल ने राष्ट्रीय पथ के प्रस्ताव के अनुरूप चीन-

भारत संघर्ष में खुलकर भारत का साथ दिया है। खुले शब्दों में चीन को आक्रमणकारी कहा गया है। यद्यपि, यह कार्य प्रबल लोकमत के दबाव का भी प्रतीक समझा जा सकता है, तथापि युग की धारा के अनुरूप भी यह है। युग की धारा है, केन्द्रीयता के विपरीत विभक्तता। इस कारण, चीन व रूस का भी सम्बन्ध अध्ययन के योग्य है। चीन को मास्को निर्णय के प्रति बँधा रहना चाहिये परन्तु चीन ठीक उसके विपरीत चल रहा है। इस समय की क्रिया के विपरीत मिश्र के राष्ट्रपति श्री नासिर ने मिश्र व शाम का एकीकरण किया था, परन्तु वह भी ज्यादा टिकाऊ न हो सका। शाम मिश्र से अलग हो गया। राष्ट्रों के व्यवहारों का ये सभी उदाहरण चेतन मन की क्रियायों का अचेतन मन के क्षेत्र में जाने से हो रहे हैं। चाहे ये क्रियायें कितनी ही सूक्ष्म व अदृश्य हों, परन्तु इनके असर समाज के ऊपर परिलक्षित हो रहे हैं। आज का संसार अपनी शक्तियों को अणु-विघटन करके बढ़ा रहा है। राजनैतिक रूप से एक समाज दूसरे से दूर जाकर अपने अस्तित्व को कायम रखना चाहता है। यह वर्तमान शताब्दी की एक सत्य विडम्बना है तथा जड़ व चेतन का परस्पर घात व प्रतिघात इतना स्पष्ट व प्रभावशाली नहीं दीख पड़ा था, जितना कि आज है। राष्ट्रों की ही दूरियाँ नहीं हैं। पश्चिम व पूर्व का ही भेद भाव नहीं है, आज पूर्व व पूर्व का संघर्ष भी है। अणु के विघटन व अचेतन मन की पृष्टिभूमि से इन सबको समझना होगा।

आर्थिक दृष्टि कोण से

बीसवीं शदी के दूसरे दशक के अन्तिम वर्ष ने इस धरती के बड़े भूभाग पर मजदूरों का राज्य स्थापित किया। इस स्थापना के पीछे मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का दर्शन प्रेरणा प्रदान कर रहा था। इसके कर्ता-धर्ता लेनिन का महान् व्यक्तित्व था। स्पष्ट रूप से संसार में सोचने विचारने व व्यवहार करने की क्रिया व्यक्तिगत मनुष्य को इकाई मान

..र प्रारम्भ हो चली। इसके पूर्व सोचने की पद्धति कुल, धर्म तथा ..लाप्रियता के मापदंड से होती थी। सोवियत संघ के स्थापना ने ..सार के इतिहास को पूर्णतया बदल दिया। इसी कारण इस क्रांति-..री स्थापना को नाजियों के बौखलाहट का सामना करना पड़ा। ..तु, रूसी क्रांति के सत्य होने से इसके स्थायित्व में अन्तर नहीं आ पाया। संचय, मुनाफा तथा शोषण से व्यक्तियां को दूर करने की क्रिया को सोवियत संघ ने अपनाया। अपनी क्रांति के संक्रमण काल में सोवियत संघ को अनेकानेक प्रतिबन्धां के आधार से अपनी नीतियां को क्रियान्वित करना पड़ा। इतिहास में प्रथम बार राज्य ने एक व्यापारिक तरीके से संपूर्ण राष्ट्रीय संपति व प्रभूतियों के द्वारा समाजवादी नियोजन को पूरा किया। यह राज्य सोवियत संघ है। दीर्घ दृष्टि योजना के महत्व को लेनिन ने समझा था। उसने प्रसिद्ध "गोरो" योजना के अन्तर्गत रूस को आधुनिक युग के ढाँचे में लाया। विद्युतकरण की क्रिया पूरी हुयी। कृषि के क्षेत्र में सहकारिता का दर्शन प्रयुक्त किया। यह आगामी विश्व के भाग्य का निर्देश था। सार्वजनिक क्षेत्र का ही विस्तार करके सोवियत संघ ने व्यक्तिगत क्षेत्र के व्यपारिक साहस को लगभग बन्द कर दिया। इस प्रयास में सोवियत संघ सफल हुआ है। प्राविधिक ज्ञान तथा रासायनिक पद्धतियों और कृषि विज्ञान के समन्वय से सोवियत संघ ने उत्पादन का कीर्तिमान खड़ा कर दिया। विकास की दरें इस प्रकार बढ़ती गयीं कि पश्चिमी जगत जब तक इस विकल्प में पड़ा था कि क्या सोवियत आर्थिक नीतियाँ सत्य होगीं? तब तक की अवधि में सोवियत संघ ने अपने ..श को खानाबदोश तथा परम्परागत कमियों से उठा कर विश्व का एक समृद्ध राष्ट्र बना दिया। आज स्थिति यह है कि सोवियत संघ के आर्थिक विकास का सामना करने के लिये यूरोप के राष्ट्रों को १७७० ई० में ..वित आदम स्मिथ की पुस्तक "वेल्थ आफ नेशंस" की मदद लेनी

पड़ रही है। आज उत्पादन तथा विकास को बढ़ाने के लिये राष्ट्रीय दीवारें गिरायी जा रही हैं। इस प्रकार एक संयुक्त यूरोप खड़ा हो रहा है। इसे यूरोपियन साझा बाजार कहते हैं। जिस यूरोप ने राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा राष्ट्रीयता के लिये कितने पारस्परिक युद्धों को देखा उसी यूरोप ने अपने राष्ट्रों को साम्यवादी आर्थिक व्यवस्था से मुकाबिला करने के लिये संयुक्त होते हुए देख रहा है। टैरिफ की दीवालें, संप्रभुता की दीवारें तथा असहयोग और व्यर्थ के व्ययकारी व्यवस्थाओं की दीवारें ध्वस्त हो रही हैं। यह इस शताब्दी की महानतम घटना है। अंतरिक्ष दूरियों से ज्यादा की दूरियों पर इस व्यवस्था के आयोजकों ने सफलता को प्राप्त किया। यथार्थ में, व्यवस्था ने आत्मगत् दूरी को खत्म करने में मदद किया है। इसका असर मनुष्यों के रहन-सहन और समाज के मूलभूत ढाँचे पर पड़ेगा। इस प्रकार से इसका असर सिर्फ यूरोप तथा उसके पड़ोसी देशों तक ही सीमाबद्ध नहीं रहेगा। अपितु, सोवियत संघ को अपनी उत्पादन नीति और विदेशी व्यापार पद्धति को ठीक करना होगा।

इसी प्रकार से यूरोप तथा मुख्य रुप से राष्ट्रमंडल से संबन्धित देश भी इस संयुक्त हाट से प्रभावित होंगे। अफ्रीका और एशिया तथा लैटिन अमेरिका के देश तो निश्चित रुप से प्रभावित होंगे। आज जिस प्रकार की प्राविधिक तरक्की हुई है और इस क्षेत्र में भी जिस तरह से अविकसित देश हैं, यही पहलू 'श्रेष्ठता' का निर्माण करता है। १८ वीं सदी से उपनिवेशवाद के बल पर यूरोप के देशों की संपन्नता आज तक कायम रही है। अब उपनिवेशवाद समाप्त हो रहा है। इस प्रकार से राजनीतिक समता सतह पर आ रही है। परन्तु, आर्थिक समता जो कि यथार्थ में समता की कसौटी है, पीछे ही पड़ रही है। अमेरिका कृषि तथा खनिज उत्पादन की प्रचुरता से तथा उपनिवेशवाद को अर्जित यूरोपीय पूंजी के विनियोग से औ

औद्योगिक क्रांति से विश्व का समृद्धतम राष्ट्र बन गया। अमेरिका जीवनोपयोगी तथा समृद्ध और प्रगतिशील जीवन का क्षेत्र बनता ही गया। यह व्यवस्था हुई पूंजीवादी पद्धति के अन्तर्गत ही। इस पद्धति में प्रतिस्पर्धा एवं व्यक्तिगत संचय को प्रोत्साहन मिलता है। इस पद्धति को साम्यवादी शिविर में "गलाकाट" पद्धति कहते हैं। समाजवादी नियोजन में वर्तमान समय में सोवियत संघ सहअस्तित्व की नीति पर चल रहा है। इस नीति में योगदान देने वाले देश यूगोस्लाविया तथा भारतवर्ष मुख्य रूप से हैं श्री जवाहरलाल नेहरू तथा मार्शल टीटो की विचारधारा शांतिपूर्ण सहअस्तित्व एवं मिश्रित अर्थ व्यवस्था तथा सहकारी प्रणाली की अर्थव्यवस्था मूलक समाज की रचना का है। इसी स्थल पर विश्व राजनीति में गुटनिरपेक्षता तथा तटस्था की स्थिति पर आता है। क्योंकि जो कुछ भी समाज के अन्दर होगा उसकी परिलक्षितता विदेशी नीति में अवश्य ही होगी। मार्क्स ने भी कहा है कि संसार का व्यवहार आर्थिक चेष्टाओं का ही संयोग है। अतः जिस प्रकार की नीति गृह में लागू होगी बाहर उसी का प्रदर्शन होगा।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, समाजवादी अर्थ व्यवस्था, मिश्रित अर्थ व्यवस्था से संसार गुजर रहा है। परन्तु इस व्यवस्था में भी व्यक्तिक्रम आ गया। कम्यूनिस्ट चीन की अपनी अलग मान्यता है। इसके अनुसार रूढ़िवादी 'कम्यून' पद्धति ही सही अर्थ नीति है। साथ ही साथ उसकी यह भी मान्यता है कि शांतिपूर्ण सहअस्तित्व पाखंड है। यह समाजवादी दर्शन का 'गलाकाट' तरीका है। इसे संशोधनवादी विचारधारा भी चीन लोग कहने में पीछे नहीं हैं। चीनी नेताओं के अनुसार श्री क्रुश्चेव 'बकूनिन' वादी है'। माओ के अनुसार तीसरा रास्ता नहीं है।

इस प्रकार से आज विश्व में राष्ट्रों के बीच आर्थिक विचार धारों का संघर्ष चल रहा है। इसके ही आधार पर संपूर्ण विश्व के समाज

में भी विभिन्न आर्थिक दृष्टिकोणों से कशमश चल रहा है। कम्यूनिस्ट देशों में सरकारी प्रबन्धकों की स्थिति अच्छी है। ये लोग सरकार से नियुक्त होते हैं। उत्पादन की इकाइयों का इनके हाथों में स्वामित्व प्रत्यक्ष: पड़ा रहता है। इस प्रकार के व्यक्तियों का एक वर्ग बनता जा रहा है। यद्यपि सोवियत संघ इत्यादि जगहों में वर्गहीन समाज का ढाँचा बनाया जा रहा है। परन्तु, पार्टी के मंत्रीगण तथा सामूहिक कृषि फार्मों और अन्य उत्पादन की संस्थाओं के कार्यकारी अधिकारी-गण सुविधा की जिन्दगी बिता रहे हैं। ऐसे व्यक्तियों की एक अच्छी संख्या बनती जा रही है। इन व्यक्ति की माँग रहती है कि शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को धक्का न पहुंचाया जावे। सोवियत संघ में आज ऐसे व्यक्तियों की संख्या ज्यादा है। इसके विपरीत साम्यवादी चीनी शिविर में न तो 'कम्यून' पद्धति लाभप्रद स्थिति में है और न तो प्राविधिक उत्पादन की इकाइयों की स्थिति अच्छी है। इस कारण देश के पार्टी संबंधित कार्यकारी गण और कम्यून संबन्धित कार्यकारीगण जनता के ध्यान को युद्ध के ही तरफ लगाये हैं। पश्चिमी तथा मिश्रित अर्थ व्यवस्था के देशों में मैनेजीरियल वर्ग राजनीति और सामाजिक नीतियों में प्रभावशाली होता जा रहा है। पूंजीपतियों तथा मध्यमवर्ग के बीच का यह वर्ग सुविधा प्राप्त वर्ग है। इसकी आशायें और आकाक्षायें सहअस्तित्व और नीति-नियम पर ही निर्भर है।

इस प्रकार आधुनिक विश्व आर्थिक तथा वैज्ञानिक और राजनीतिक तत्वों के विषम सम्मिश्रण में पड़ा है। व्यवसायिक वर्ग, मध्यम वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग, सामान्त वर्ग, कम्यूनिस्ट पार्टी, मजदूर वर्ग, सेना और धर्म राजनीति पर छाया हुआ है। इतिहास-वेत्ता अर्नाल्ड टायनवी ने लिखा है कि आज जितने भी राज-नीतिक 'वाद' दिखाई पड़ते हैं, उन सबकी उत्पत्ति इन्हीं आठ शक्ति-स्रोतों से है। श्री अर्नाल्ड टायनबी ने सुविधा के लिए सम्पूर्ण संसार

को छः भागों में बाँट दिया है। (१) पश्चिमी देश, (२) लैटिन देश (३) अफ्रीकी देश (४) अरब देश (५) एशियाई देश और (६) कम्यूनिस्ट देश।

लैटिन अमेरिका, अरब देश तथा कुछ एशियाई देशों में राजनीति पर सेना का प्रभाव है। न्यूजीलैंड आस्ट्रेलिया दक्षिणी अफ्रीका, अरब इत्यादि देशों में राजनीति पर जमींदारों तथा शेखों का प्रभाव है इसी प्रकार कहीं-कहीं पर मजदूरों तथा बुद्धिजीवियों की धाक है। उसी प्रकार से आज विश्व में सशस्त्र सेना भी राजनीतिक दल के रूप में है।

नाटो तथा वारसा सैनिक सन्धियों से अधिकांश देश संबन्धित है। सैनिक तैयारयों के आधार पर राष्ट्रीय श्रेष्ठता को भी कुछ काम हालत में स्वीकार किया जा रहा है। अणु-अस्त्रों के उत्पादन के पीछे वृहत औधोगिक प्रतिष्ठानों की अनिवार्यता के कारण रक्षा की नीतियाँ संयुक्त रूप से तय हो रही हैं। इस प्रकार से विखरी हुई शक्ति केन्द्रीकरण की तरफ उन्मुख है। कनाडा, अमेरिका, स्विटजरलैंड ब्रिटेन, नारवे, स्वीडेन, फिनलैंड, डेनमार्क, यूनान, पश्चिमी-जरमनी, नीदरलैंड, फ्राँस वेल्जियम, आस्ट्रिया, इटली, आयरलैंड दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैंड आपसी आस्ट्रेलिया इत्यादि पश्चिमी प्रभाव के हैं इनमें से अधिकांश देशों ने सहयोग व सन्धियों के द्वारा एक निश्चित नीति पर चलना शुरु किया है। इन देशों ने संसार के बड़े बड़े वित्तीय तथा राजनीतिक केन्द्रों को संस्थापित किया है। न्यूयार्क, लन्दन, एम्सटर्डम, ज्यूरिख जैसे महानगर तथा वित्तीय साम्राज्य की राजधानियाँ इन देशों के प्रभाव के अन्दर आती हैं। ये देश गुट लिप्तता तथा विभिन्न दलों की उपस्थिति से निर्वाचन द्वारा प्राप्त सहमति से, शासन संचालित करते हैं। इसके विपरीत सोवियत संघ, चीन, पूर्वी जर्मनी, हँगरी, अल्वानिया, चेकोस्लावाकिया

राजनीतिक दृष्टि कोण से

बल्गेरिया, रूमानिया, पोलैंड, यूगोस्लाविया, उत्तर कोरिया और वीत-मिन्ह देशों में एक ही साम्यवादी दल के द्वारा निर्वाचन पद्धति को दल में ही रखकर प्राप्त अधिकारों तथा संक्रमण काल की स्वयं आधारित मान्यताओं की आवश्यक पूर्ति की शक्ति के लिए शासन चलता है। इन देशों ने भी पूंजीवादी राष्ट्रों से बचने के लिए सैनिक तैयारयाँ और समझौते कर रखा है।

इन देशों की राजनीति पर बुद्धिजीवी, सेना, मजदूर और दलीय कार्यकर्ताओं का प्रभाव है। पोलैंड और हंगरी के स्थानों में मजदूरों तथा पार्टी कार्यकर्ताओं के बीच संघर्ष हो चुका है। इसका कारण है कि मजदूर वर्ग सुविधा प्राप्त वर्ग हो गया है। वह अपनी सुविधाओं के लिये संघर्ष कर सकता है। अरब देश के १२ राष्ट्र हैं। अभी ये विकास की प्रथम मंजिल पर हैं। शेख, सामंती, अमीरों तथा तेल कुबेरों का राजनीति पर व्यापक प्रभाव है। इनके अलावा नयी दिल्ली, कोलम्बो, बाडुंग, काहिरा तथा बेलग्रेड तटस्थता और सहअस्तित्व के आधार पर चल रहे हैं। चीन के आक्रमण से उत्पन्न भयंकर स्थिति के बावजूद भी भारत ने अपनी 'तटस्थता' की नीति को नहीं छोड़ा है।' यह विश्व के स्वास्थ्य एवं आगामी जीवन की सबलता का लक्षण है।

"रूस-चीन सम्बन्ध"

इन परिस्थितियों के अतिरिक्त आज सर्वत्र रूस-चीन मतभेद की चर्चा है। यथार्थ में यह मतभेद अब स्वयं साम्यवादी सम्मेलनों से प्रतिध्वनित हो रहा है। सन् १९६२ ई० के अन्त में रोम राष्ट्रीय पथ स्थित अखिल विश्व साम्यवादी सम्मेलन ने स्पष्ट घोषणा किया कि श्री क्रुश्चेव की शांति-पूर्ण सहअस्तित्व की नीति अणु-युग में उपयोगी है। इसी के साथ ही सम्मेलन ने उन साम्यवादी साथियों की आलोचना किया कि वे अणु-अस्त्र से खेलना चाहते हैं। इससे न तो स्वयं उनका हित है और न तो मजदूरों का तथा संसार

के मानवता का कल्याण है। यह ज्ञातव्य है कि इटली एक ऐसा देश है जहाँ से ऐतिहासिक फरमान स्वीकृत हुये हैं। मध्ययुग में इटली के पोप के द्वारा यूरोप और तत्कालीन रूस के बादशाहों के ऊपर एक-तंत्रीय आदेश यहीं से चलते थे। इतिहास के विपर्य से इसी इटली कांग्रेस (कम्यूनिस्ट) ने राष्ट्रीय तरीकों से ही साम्यवाद की प्राप्ति को दर्शाया। इसके पूर्व साम्यवाद लाने के लिये मास्को की अनुमति, अन्तर्रराष्ट्रीय तरीका तथा अराजकता के समान स्थिति उत्पन्न करना आवश्यक होता था। इटली कांग्रेस ने साम्यवाद को बहुकेन्द्रीय संगठन के पास पहुँचा दिया। इटली कांग्रेस के निर्णय को पश्चिमी देशों ने संशय के साथ देखा। इसमें साम्यवादियों की पैतरेबाजी तथा हथकंडों का आभास होता था। साम्यवाद के विकास का यह नया तरीका समझा गया। परन्तु, यथार्थ में यह एक लोचपूर्ण पद्धति का समावेश था। संशोधन वाद का इस समय से प्रारम्भ समझा जा सकता है। राजनीतिक रूप में संसद या विभिन्न रूपों से साम्यवाद लाने की मान्यता चीन स्वीकार न कर सका। चीन या सोवियत संघ की भूमि का यह प्रश्न न था। परन्तु, उसका सम्बन्ध उन देशों से था जहाँ पर साम्यवाद अभी राज्य सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सका है। अणु-अस्त्र के अलावा रूस-चीन में क्रांति लाने की आदर्शात्मक विधियों पर भी माओ और क्रुश्चेव में मतभेद है। क्रुश्चेव ने मुख्यरूप से अणु-अस्त्रों की वास्तविक खतरों को साधिकार देखा और समझा है। इस कारण रूस ने संयुक्तराष्ट्र संघ के द्वारा आम और पूर्ण निःशस्त्रीकरण के प्रस्ताव को रखा। शिखर सम्मेलन में चीन के विरोध के बावजूद रूस ने भाग लेना पसंद किया। बाल्टिक तट तथा चीन के समुद्री इलाकों को अणु-अस्त्र रहित क्षेत्र घोषित करने का प्रस्ताव किया। स्पष्टतः ऐसे प्रश्नों की चरितार्थता से चीन का पूर्ण क्षेत्र शांति के क्षेत्र में बदल जाता। उस स्थिति में चीन सिर्फ आइसोटोप्स

ही बनाने के कार्य को कर सकता। बाल्टिक तथा फारमूसा क्षेत्र पर प्रतिबन्ध हो जाने से एशिया और अफ्रीका के देश इस प्रकार अणु-अस्त्रों की तैयारी में फंसने से बच जाते। उनकी पूरी शक्ति गरीब जनता को अभावों की पूर्ति में लगती। परन्तु, ऐसे प्रस्तावों से चीन दुनियाँ का एक महान शक्ति होने से वंचित हो जाता। चीन ने श्री क्रुश्चेव पर आरोप लगाया। चीन का कहना है कि रूस साम्यवाद को धोखा दे रहा है क्योंकि चीन के अनुसार रूसी नेता युद्ध से भय-भीत हैं। चीन को स्वयं में भी अणु-अस्त्रों के युद्ध विस्तार से भय नहीं है। जेनेवा निःशस्त्रीकरण सम्मेलन के १९६० ई० वाली समिति के समक्ष चीन ने अपने विचार भेजे थे। चीन का कहना था कि अणु-अस्त्रों के प्रतिबन्धों से चीन अपने को बँधा हुआ नहीं रख सकता है। क्योंकि चीन की सदस्यता संयुक्तराष्ट्र संघ में न रहने से चीन इन नियमों से आवद्ध नहीं है। इसके अलावा चीन युद्ध को ही अन्तर-राष्ट्रीय सम्बन्धों का आधार समझता है। चीन की दृष्टि में अणु युद्ध और परंपरागत युद्ध में अन्तर नहीं है। संसार के उद्धार (आत्मसात) के लिये चीन युद्ध करने में हिचकिचाहट नहीं कर सकता है। युद्ध और साम्यवाद चीनी नीतियों के समग्र अंग हैं। विकसित संसार को विनाश से बचाने के लिये रूस अणु-अस्त्रों के उत्पादन तथा अंतरिक्ष यात्रा तक को निःशस्त्रीकरण एवं सहकार के पथ से पूरा करना चाहता है। परन्तु, चीन इस प्रश्न पर अणु-अस्त्रों के अभाव जनित हीनता में भी रूस से अलग खड़ा है। अलवानिया और चीन बाल्टिक तथा ताइवान क्षेत्र को अणु-अस्त्रों से युक्त करना चाहते हैं।

आज विश्व लगभग दो विचार धाराओं की आर्थिक नीतियों से संयुक्त है। पूंजीवादी पद्धति का नेता अकेले अमेरिका है। शेष पश्चिमी देशों को आर्थिक सहायता अमेरिका से प्राप्त होती है। इस कारण पश्चिमी देश अमेरिकी परावलम्बन में पड़े हुए हैं। इसी

कारण दिसम्बर १९६२ ई० बहमा स्थिति नसाऊ सम्मेलन ने प्रतिरक्षा के नाम पर अमेरिका के बाद प्रमुख नेता ब्रिटेन को भी, जिसे कुछ रियायतें सम्मानजनक रूप से प्राप्त थीं, और अधिक झुकने को बाध्य कर दिया है। फ्रांस के राष्ट्रपति देगाल अण-अस्त्र प्रतिष्ठानों के रख-रखाव तथा यूरोपीय सुरक्षा व सहयोग पर अमेरिका से समझ रहे हैं। इस प्रकार की आर्थिक सहायतायें और शर्तें अमेरिका ने तटस्थ देशों के साथ भी कर रखा है। इस क्रिया में अमेरिकी श्रेष्ठता और प्रभुता स्पष्ट है। ऐसी ही स्थिति आज कम्यूनिस्ट देशों में सोवियत संघ की है। सोवियत संघ की आर्थिक सहायताओं से चीन, उत्तरी कोरिया, वीतमीन्ह, अलबानिया, यूगोस्लाविया, पूर्वी जर्मनी, पौलैंड, हँगरी, चेकोस्लावाकिया, रूमानिया, बलगेरिया, बाहरी मंगोलिया इत्यादि देश पूर्णतः आर्थिक सहायता पाते हैं। इनमें से यूगोस्लाविया इधर लम्बे अरसे से सहायता से वंचित रहा है। क्योंकि मार्शला टीटो से श्री स्टालिन का मतभेद हो चुका था। सब मिला जुलाकर इस पूरे शिविर का महाजन अकेले सोवियत संघ है। अमेरिका पश्चिमी देशों का महाजन है और रूस इस खेमें के देशों का महाजन है। इन दोनों महाजनों की प्रतिस्पर्धा विश्व के अन्य अछूते तथा अर्धविकसित देशों में होती है। यह प्रतिस्पर्धा आर्थिक सहायता, सैनिक तैयारी तथा वैज्ञानिक खोज और अंतरिक्ष यात्रा के कई मोर्चों पर जारी है। कम्यूनिस्ट समाज बनाम कम्यूनिटी समाज के निर्माण का संघर्ष है। यह प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक है। परन्तु, इधर बीच चीन-रूस का मतभेद अध्ययन का विषय बन गया है। इसके पीछे पृष्ठभूमि है। चीन भी स्वयं में अभी भी पिछड़ा राष्ट्र है। लोगों का जीवन स्तर निम्नस्तर का है। परन्तु, चीन नहीं चाहता है कि वह रूस से विश्व की ख्याति पाने में पीछे रहे। इसके अलावा रूस को आर्थिक

महाजनवाद एवं सहअस्तित्व

शक्ति का भी मुकाबिला चीन नहीं कर सकता है। तथापि, चीन का इरादा स्पष्टतः प्रतिस्पर्धा से पीछे हटने का नहीं है। क्योंकि स्वतंत्र विश्व में साम्यवादी और पूँजीवादी राज्यों के बीच टकराव की समस्या है। परन्तु साम्यवादी शिविर में यह प्रश्न है कि श्रेय किसे प्राप्त होगा। साम्यवादी विचारकों के अनुसार बीसवीं शताब्दी का अन्तिम समय पूँजीवाद के समाप्ति का समय होगा। इससे चीन की मशा है कि वह रूस से पीछे किसी भी कार्य में न रहे। इस क्रिया में प्रश्न उठता है कि आर्थिक सहायता का। उदाहरणार्थ हम अलवानिया का प्रश्न ले सकते हैं। जनवरी १९५९ ई० में चीन ने ५५ मिलियन रूवल की सहायता का वचन अलवानिया को दिया। यह सहायता अलवानिया के १९६१-६५ ई० के तृतीय पंचवर्षीय योजना की चरितार्थता के लिये थी। तुरन्त वाद ही रूस ने विरोध के बावजूद ३५५ मिलियन रूवल की सहायता की घोषणा अलवानिया को देने के लिये किया। उत्तरी-कोरिया, बीतमिन्ह, हँगरी, पोलैंड, पूर्वी-जर्मनी, चेकोस्लाविया, यूगोस्लाविया और लैटिन अमेरिका तथा नव-स्वतंत्र अफ्रीका के देशों के लिये समाजवादी राष्ट्र ऋण तथा सहायता की योजनायें बना लिये हैं। इन योजनाओं से समाजवादी राज्यों की कल्पना है कि उपनिवेशों के अवसान के बाद उपनिवेश या उसके खंडहर स्वरूप स्मारक शेष न रह जायें। क्योंकि आज पूँजीवाद का जैसा स्वरूप है उस ढाँचे में ऐसा प्रतीत होता है कि यदि राजनीतिक चिन्ह हट जाने के बाद भी व्यापारिक स्वरूप रह जाये तो उपनिवेशी ताकतों को कोई हानि नहीं होती है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसपर सोवियत संघ विशेष सतर्क है। प्रसिद्ध रूसी अर्थशास्त्री ई० वर्गा के अनुसार "हालैंड ४०० वर्षों से भी अधिक समय तक उपनिवेश कायम किये था। अपनी आवादी के अनुपात से डच लोग गुलामों को अधिक संख्या में अपने अधिकार में रखे थे। हिन्दएशिया के बूते डच अर्थनीति

गतिशील थी। परन्तु हिन्दएशिया के निकल जाने से भी डच अर्थनीति में अन्तर नहीं है। इसका प्रमाण है कि औद्योगिक सूचांक १९५२ ई० से १९५६ ई० तक ४२% बढ़ा है। १९५८ ई० में हालैंड में ४५,००० नये आवास गृह बने थे। यही संख्या १९५८ ई० में ८९,००० के ऊपर पहुंच गयी। सन् १९४९ ई० से डच मुद्रा का विनिमय डालर के मुकाबिले गिरी नहीं है। सन् १९५२ ई० में ८९,००० गिल्डिर्स का निर्यात होता था जब कि यह संख्या १२,२०० मिलियन गिल्डर्स की १९५८ ई० में पहुँच गयी। व्यापारिक शेयरों के दाम १९५३ ई० में १०० थे जब कि दिसम्बर १९५९ ई० में २२५ हो गये। यथार्थ में हालैंड ने झटका पाया परन्तु यह झटका सामान्य तरीके का ही रहा। इसमें असमान्यता प्राप्त नहीं हुयी।" इस प्रकार हम पाते हैं कि पूँजी और पूँजीपति पद्धति का दूसरे रूप में विकास हो रहा है। खोज के बाद अर्थशास्त्रियों ने पाया कि "किस्त पद्धति की भुगतान" परंपरा ही इसके लिये विशेष उत्तरदायी है। क्योंकि आज सर्वत्र स्वतन्त्र का समूह बनता जा रहा है। इन देशों को अपनी आर्थिक विकास में ऋण की आवश्यकता है। इसके साथ ही साथ आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों ने दीर्घ-नियोजन की नीति के कारण भुगतान में सहूलियत माँगा है। यह सहूलियत ही किस्त के विकास की जननी है। इसके अलावा पूँजीपतियों ने वैज्ञानिक साधनों के बल पर उत्पादन का पहाड़ खड़ा कर दिया है। अर्धविकासित एवं पिछड़ी अर्थ व्यवस्था के देश कई कारणों से उन वस्तुओं की खरीद बाजारू मूल्य पर नहीं कर सकते हैं। इसके अलावा उत्पादक देश उन वस्तुओं के मूल्य में भी कमी करने की स्थिति में नहीं हैं।

इस प्रकार औद्योगिक वस्तुओं के बिक्री का प्रश्न पैदा हो जाता है। इस कारण वस्तुओं की बिक्री उधार-पद्धति से प्रारम्भ की जाती है। इसमें 'किस्त' बाँध दिया जाता है। इस प्रकार वस्तुओं की खपत

के लिये विस्तृत बाजार तैयार हो जाता है। साथ ही साथ स्थायी ग्राहक तैयार हो जाते हैं। इस पद्धति ने पूँजी के खपत के लिये हायर परचेज का भी मार्ग प्रशस्त किया है। सम्पूर्ण दृष्टिकोण से प्रकट है कि उधार-पद्धति एवं हायर-परचेज समझौतों से विकसित देश अर्ध-विकसित देशों में अपना प्रभुत्व बढ़ा रहे हैं। सोवियत-संघ २·५% के व्याज पर ऋण देता है। अमेरिका, ब्रिटेन तथा कनाडा इत्यादि देश भी तटस्थ तथा नवस्वतन्त्र देशों को ऋण के रूप में सहायता दे रहे हैं। गत दशक में संसार में जितनी अधिक की संख्या में व्यापारिक-समझौते तथा ऋण एवं आर्थिक सहकार की योजनायें स्वीकृत हुयीं उतनी संख्या में समझौते सम्पूर्ण इतिहास में नहीं हुये थे। चीन इन सभी परिस्थितियों से अवगत है। उसने लैटिन अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया में सहायता प्रदान करने की योजनाओं को अग्रसित किया। पूर्वी-यूरोप में भी रूसी प्रभाव को रोकने के लिये चीन ने तैयारी किया। क्योंकि चीन नहीं चाहता है कि वह विश्व का नेता बनने में पीछे रह जाय। इस प्रसंग में ज्ञातव्य है कि सोवियत संघ ने संयुक्त अरब गणराज्य को अस्वान बाँध के लिये सहायता जारी रखा जब कि संयुक्त अरब गणराज्य ने साम्यवादी दल को उक्त देश में अवैध कर रखा था। कारण स्पष्ट है। सोवियत संघ ने दीर्घ दृष्टि से काम लिया। संयुक्त अरब गणराज्य को रूस अप्रसन्न नहीं कर सकता है। क्योंकि अफ्रीका इत्यादि देशों में प्रभाव वृद्धि के लिये उक्त देशों की दोस्ती अनिवार्य है। इस नीति ने प्रतीक्षा को जन्म दिया। प्रतीक्षा ने सहअस्तित्व की अर्थनीति का विकास किया। रूस इस नीति का पथिक है। इस नीति के ही कारण रूस ने भारत की नियोजन में दिलचस्पी लिया है। सोवियत संघ भारत तथा अन्य नवस्वतंत्र राष्ट्रों के बीच अपनी पूँजी निर्यात को बढ़ाना चाहता है। रूसी अर्थ-शास्त्रियों के अनुसार पूँजीपतियों एवं साम्यवादियों के राष्ट्रों के बीच

पूँजी निर्यात का संघर्ष चल रहा है। कारण स्पष्ट है। क्योंकि इतिहास में इस युग के पहले इतनी मात्रा में राष्ट्रों के बीच पूँजी विनियोग एवं पूँजी-निर्यात की क्रिया कभी हुयी नहीं थी। रूस इस युद्ध में दोतरफे झंझट में फँसा है। प्रथम रूप में सोवियत संघ को अमेरिका के समक्ष तटस्थ तथा नवस्वतन्त्र देशों के लिये पूँजी-निर्यात का संघर्ष लेना पड़ता है। इसके अलावा सोवियत संघ को साम्यवादी देशों के विकास के लिये मदद देनी पड़ती है। प्रमुख रूप से इसी क्षेत्र में रूस-चीन की प्रतिद्वंदिता आ जाती है। चीन के सामने कठिनाइयाँ हैं। औद्योगिक दृष्टि से चीन रूस से पिछड़ा हुआ है। पूँजी का निर्माण भी चीन में रूस के मुकाबिले बहुत कम है। इसके अलावा पूँजी-निर्माण की सम्भावना भी चीन में अभी रूस के समक्ष कम है। परन्तु चीन ने सेना, औद्योगिक प्रतिष्ठान, यातायात एवं विदेशी सहायता तथा सहकार के कार्य को प्राथमिकता दिया है। अफ्रीका, एशिया, पूर्वी-यूरोप एवं लैटिन अमेरिका के अधिकांश देशों को आर्थिक सहायता के कार्यक्रम को चीन ने आगे बढ़ाया है। आज संसार की जैसी स्थिति है एवं जिस प्रकार से संसार स्वतन्त्र देशों का समुदाय बनता जा रहा है, उस पृष्ठभूमि में किसी भी देश की श्रेष्ठता उस देश के क्षेत्रफल, कच्चे माल एवं पक्के माल की तैयारी तथा शेष संसार के सम्बन्धों पर आधारित है। चीन का क्षेत्रफल विशाल है। जनसंख्या सर्वाधिक है। श्रमशक्ति प्रचुर है। साम्यवादी दर्शन का भी विकास चीनी पृष्ठभूमि में किया गया है। चीनी नेता स्यात् उत्पादन तथा कच्चे माल की आवश्यकता के लिये सम्पूर्ण शक्ति स्त्रोतों का उपयोग किये हैं। इसके लिये कम्यूनों की स्थापना किये। इस स्थापना में इनकी इच्छा यही रही है कि वे साम्यवादी समाज रचना की क्रिया में रूस से आगे बढ़ जायें। स्वाभाविक रूप से देश के भीतर तथा देश के बाहर साम्यवादी विचारधारा में गहन आस्था होनी चाहिये। चीन विश्व के अन्य देशों से

अपना सम्बन्ध प्रतिस्पर्द्धा पूर्वक बढ़ा रहा है। साम्यवादी शिविर में रूस-चीन का क्षेत्रफल लगभग बराबर हो चला है। कच्चा माल भविष्य में सभी देशों को अपने ही पैर से मुहैया करना पड़ेगा। इस प्रकार विस्तृत क्षेत्रफल का फायदा रहेगा ही। इसके अलावा पूँजी-निर्माण भी गति पर है। रूस-चीन ने अभी तक अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक सहकार के बैंक नहीं खोले हैं। मुख्य रूप से चीन के संयुक्त राष्ट्रसंघ में न रहने से चीन दूसरा भी विकल्प नहीं बना पाया है। पृथक्-पृथक रूप में रूबल व चीनी मुद्राके संघर्ष का युग प्रारम्भ हो गया है। डालर तथा स्टर्लिंग का संघर्ष पूँजीवाद के निहित अन्तरद्वन्द्व की कहानी है। परन्तु रूसी सिक्का तथा चीनी सिक्का का संघर्ष साम्यवाद के विपरीत है। नये मार्क्स को जन्म लेना होगा। ताकि इन असंगतियों का निराकरण हो सके। साम्यवाद के विश्वव्यापी विकास के लिये एक सिक्का, एक महाजन तथा एक प्रेरणा-केन्द्र होना चाहिये। महाजनवाद ने दुनिया को एक रास्ता दिखाया है। सर्वदा से वह रास्ता मुक्त व्यापार के क्षेत्र का रहा है। महाजनवाद से चलनेवाले देश चाहे पूँजीवादी हों या साम्यवादी टकरा कर ही रहेंगे। चीन-रूस का सम्बन्ध इससे भिन्न यदि है तो सिर्फ मात्रा में गुण में नहीं। चीन तथा रूस के सम्बन्धों को इस संदर्भ में देखना चाहिये। विशेष रूप से इन देशों का जन्म ही अर्थनीति से हुआ है। आज यह बात स्पष्ट हो गयी है कि कोई भी देश दूसरे देशों पर आर्थिक प्रभुत्व जमाकर अपने मनोवांछित सुविधाओं को पा सकता है। इसी कारण ये दोनों देश पूँजी-निर्यात कर संघर्ष में दौड़ पड़े हैं। इस दौड़ में जितनी ही तीव्रता होगी रूस-चीन के सम्बन्धों में मतभेद के उभार स्पष्ट होते जायेंगे। सहअस्तित्व की अर्थनीति की महत्ता जितनी पूँजीवादी देशों तथा साम्यवादी देशों के सम्बन्धों के लिये है, उससे भी ज्यादा इस नीति की उपयोगिता स्वयं साम्यवादी शिविर के राज्यों के लिये है।

साम्यवाद लाने के लिये इटली कांग्रेस ने प्रत्येक देश की परीस्थितियों का ख्याल कर साम्यवादी दलों को स्वयं का रास्ता चुनने के लिये वाध्य एवं प्रेरित किया। साम्यवाद के विकास के लिये यह कार्य किया गया था। इसके अलावा श्री जवाहर लाल नेहरू ने सोवियत संघ के शीर्षस्थ नेताओं को कोमिनीफार्म के विघटन के लिये भी सुझाव दिया था।

मूलभूत नीतियाँ

कोमिनीफार्म सोवियत संघ के द्वारा संचालित आंदोलन का मंच था। समय के रुख के कारण यह मंच उपयोगी भी नहीं रह गया था। यूगोस्लाविया को इससे वहिष्कृत किया गया था। इसके अलावा अखिल विश्व गिरजाघर संघ की तरह यह मंच विश्व में फैला था। परन्तु, अफ्रीका एवं एशिया के साम्यवादी दल स्वतंत्रता संग्राम में बहुत कारगर नहीं हो रहे थे; इस कारण सरकारी स्तर से सहयोग बृद्धि की आवश्यकता को सोवियत संघ ने महसूस किया। इसके बाद इटली कांग्रेस ने साम्यवाद लाने की स्वतंत्र पद्धतियों का आविष्कार किया। ये सभी संकेत साम्यवाद के लोचपूर्ण नीतियों के संकेत थे। इन नीतियों से साम्यवाद नवस्वतंत्र राष्ट्रों के बीच लोकप्रिय बन गया। इसके बाद ही श्री क्रुश्चेव ने स्टालिन को मृत्युपर्यन्त यंडित किया। सम्पूर्ण संसार चकित हो गया। क्योंकि सोवियत संघ की नीतियों को अत्यन्त गोपनीय रखा जाता था। अबतक का संसार अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी इत्यादि देशों के राजपुरुषों का भूतपूर्व कार्य आलोचनात्मक ढंग के संस्मरणों द्वारा जानकारी प्राप्त कर चुका था। ऐसी परंपरा साम्यवादी राज्यों के कृत्यों का लेखा-जोखा पश्चिमी जगत के राजपुरुषों एवं पत्रकारों के अनुमान पर ही निश्चित किया जाता था। परन्तु, श्री कुश्चेव की स्पष्ट स्वीकारोक्ति से संसार को पता चल गया कि स्टालिन बाद ने कठोर दमन का सहारा लिया था। शंका के आधार पर बहुसंख्यक व्यक्तियों को मृत्युदंड दिया था। इन सभी तथ्यों को श्री

क्रुश्चेव ने स्पष्टतः संसार को बता दिया। इसके पीछे सामाजिक व्यवस्था का परिणाम था। सोवियत संघ के नागरिक भौतिक संपन्नता प्राप्त कर चुके थे। देश की आबादी का भाग अति उन्नत स्तर को प्राप्त कर लिया है। सामान्य जन भी सुखी है। ऐसी स्थिति में देश के अन्दर दमन तथा पीड़न को गतिशील रखना संभव नहीं है। सामाजिक व्यवस्था जिस स्तर पर सोवियत संघ में उन्नत हो चुकी है उसको कोई भी नेता कल्पना का सब्जबाग दिखा कर उसकी माँगों को दबा नहीं सकता है। प्रमाण स्वरूप कम काम के घंटे तथा अन्य सुविधायों का विकास हुआ। देश के अन्दर भ्रमण एवं आमोद-प्रमोद की अधिक छूट प्राप्त हुयी। इन बातों के अलावा श्री क्रुश्चेव का अपना व्यक्तित्व भी सहायक हुआ। श्री क्रुश्चेव ने सोवियत संघ के उन्नत सामाजिक ढाँचे को परखा तथा जनता की शांति की आशा को भी महसूस किया। फलतः स्वर्गीय स्टालिन के कब्र की खुदायी हुयी। यह एक ऐतिहासिक मोड़ एवं संकेत था। चीनी नेता इससे भयभीत हुये। क्योंकि स्टालिन के कब्र की खोदाई का अर्थ था स्टालिन युगीय दमन नीतियों का कब्रीकरण। स्टालिन युगीय नीतियों के कब्रीकरण से सोवियत संघ की जनता ने राहत की साँस लिया। क्योंकि सोवियत जनता को अपने प्राप्त सुखों के अधिकार के बारे में आश्वासन प्राप्त हुआ था। इसके विपरीत चीन नेता पहले से अधिक सतर्क हो गये। चीनी जनता ने भी रियायत की माँग किया। परन्तु, चीनी नेता सोवियत संघ के अनुरुप सामाजिक व्यवस्था तथा मनोदशा के प्रगति पर नहीं थे। फलतः सोच-विचार के पश्चात् श्री माओ ने क्रेमलिन से जवाब-तलब किया। माओ का तर्क था कि ऐसे अहम प्रश्न पर पेकिंग की राय ली जानी चाहिये थी। इसके अतिरिक्त पेकिंग की राय में स्टालिन की नीतियाँ ठीक थीं। पेकिंग ने यह तर्क दिया था कि जबतक साम्यवादी राज्य पूँजीवादी राज्यों से घिरे हैं तबतक के लिये स्टालिन

का मार्ग सत्य है। इसके अतिरिक्त चीनी नेताओं ने अपने देश की जनता को बहकाने के लिये नया नारा दिया। माओ ने कहा कि "सौ फूल एक साथ खिलें"। इस प्रकार चीनियों को विचार स्वतंत्रता का मौका दिया गया। यद्यपि यह मौका धोखा पूर्ण था। जिन चीनियों ने माओ के नारे के चक्कर में आकर अपने स्वतंत्र विचारों को प्रकट किया उनका क्रूरता के साथ दमन हुआ।

चीन दृढ़ता पूर्वक अपने रास्ते पर हठ के साथ खड़ा हो गया। माओ ने दूसरा विरोध पत्र जवाब-तलब के रूप में क्रेमलिन के पास भेजा। क्रेमलिन से स्टालिनवादी नेताओं का निष्कासन हो रहा था। इस निष्कासन पर माओ की सम्मति नहीं ली गयी थी। संविधानिक आपत्ति का प्रश्न था। माओ ने १४ फरवरी १९५० ई० की संधि की धाराओं के प्रति श्री क्रुश्चेव का ध्यान आकृष्ट किया था। यह संधि रूस-चीन के बीच ३० वर्ष की दोस्ती के लिये इकरारनामा है। इस संधि की अवधि में स्वतः महत्व है। रूसी एवं चीनी नेता इस मतवाद पर एकमत है कि बीसवीं शताब्दी पूँजीवाद के अवसान का समय है। इस प्रकार १९८० ई० तक की अवधि तक रूस व चीन का सहकार एवं विकास उन्नत स्थिति तक पहुंच जायगा। इसमें भी ज्ञातव्य है कि रूसी नेता स्टालिन भी राष्ट्र को सिर्फ वर्ग ही मानते थे। ऐसी ही धारणा चीनी राष्ट्रपति ल्यूशाओ ची की भी है। इस लिये आर्थिक-विकास की स्थिति एवं वर्ग चेतना के विकास तथा बीसवीं शताब्दी तक पूँजीवाद के अवसान से रूस व चीन एकीकरण संभव हो जाने की दिशा में प्रगति करेगा। १९८० ई० से २००० ई० तक की अवधि में राज्य धीरे-धीरे तिरोहित हो जायगा। ऐसी कल्पना पूरे साम्यवादियों की है। राज्य के लुप्त हो जाने पर कम्यून समाज ही रह जायगा। इसलिये माओ ने तर्क दिया कि इन सभी संभावनाओं को श्री क्रुश्चेव ने नष्ट कर दिया। वास्तविकता यह है कि चीनी नेताओं को अपने

देश में दमन नीति की आवश्यकता थी और है। दमन नीति में ही विश्वास भी है। क्रुश्चेव की उदारता से चीनी जनता अपने नेताओं के प्रति शंकित हो गयी। इसी बीच चीन ने इन सभी प्रश्नों को विश्व की अन्य साम्यवादी पार्टियों के समक्ष अपने स्वार्थ एवं दृष्टिकोण से रखना प्रारम्भ कर दिया।

उपर्युक्त सभी प्रश्नों से महत्वपूर्ण प्रश्न है वर्ग-संघर्ष का। सोवियत संघ की जनता एवं चीनी जनता परस्पर भिन्न सतह पर है। आर्थिक विषमता है। विभिन्न राष्ट्रीयताओं एवं आर्थिक असमानताओं के बीच चीनी एवं रूसी जनता कायम है। लगभग १९३४ ई० में श्री स्टालिन एवं श्री माओ के बीच संधि हुई थी। उक्त संधि अत्यन्त गोपनीय पत्र है। विल्टिंग आफ हण्ड्रेड फ्लावर के लेखक ने जिस तस्वीर का वर्णन किया है तथा राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के लेखक श्री लियो शाओ ची ने जिस उत्साह के साथ १९५४ ई० तक सोवियत संघ के मत का समर्थन किया है, उससे उक्त संधि की महत्ता स्पष्ट है। ऐसा प्रतीत होता है कि चीन अब अपने को उक्त संधि से मुक्त समझता है। क्योंकि उक्त संधि के द्वारा माओ का कर्तव्य था कि चीन उद्धार के पश्चात् उसे सोवियत संघ की अन्तर्राष्ट्रीयता के ही अन्तर्गत एकबद्ध करें। ऐसा कुछ माओ ने किया नहीं। अपितु, स्टालिन के प्रभाव व परिस्थितिवश १९५० ई० में ३० वर्षीय संधि को ही किया। तदुपरान्त स्टालिन की मृत्यु के पश्चात् सोवियत संघ से चीन क्रमशः अलग हो गया। क्रेमलिन एवं पेकिंग विशेषज्ञों का मत है कि माओ ने जिस रुक्षता का व्यवहार रूसी सैनिक अधिकारियों से पाया है उसी का यह फल है। परन्तु, यथार्थ में राष्ट्रीयता अभी सिर्फ वर्ग नहीं नहीं बन सकी है। जिस प्रकार आज पूँजी निर्यात एवं निर्माण के नाम पर संयुक्त-राज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन तथा फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी में प्रतिस्पर्धा तथा एकीकरण का प्रयास और साझा बाजार की

खोज जारी है उसी प्रकार चीनी-रूसी मतभेद निपटाने का प्रयास चल रहा है। इस प्रकार पूँजीवाद के दोष इन दोनों देशों में आ चुके हैं। चीनी नेता अपने देश को प्राचीन समझते हैं। अपनी सभ्यता को प्राचीन मानते हैं। इसके अलावा अपने अनुभव को श्रेष्ठ समझते हैं। मतभेद का विकास हो चुका है। चीनी मत के समर्थक सोवियत संघ में भी हैं। परन्तु श्री क्रुश्चेव का व्यक्तित्व तथा रूसी जनता की समृद्धि एवं लगभग सम्पूर्ण संसार की जनता की शांति की कामना चीनी मनोवृत्ति पर जय लाभ करेगी। सम्पूर्ण विकृतियों के बावजूद संसार की जनता इस दशक में संघ बद्धता की दिशा में है। प्रयास राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक चल रहे हैं। ऐलसी प्रसाद में जर्मनी एवं फ्रांस ने अपनी ऐतिहासिक दुश्मनी को भुलाकर रक्षा, परराष्ट्र एवं सांस्कृतिक एकता की संधि को पूर्ण किया। ब्रूसेल्स सम्मेलन की विफलता के बावजूद भी यूरोपीय साझा बाजार तथा मुक्त व्यापार संगठन एक वास्तविकता के तरफ बदल रहा है। अरब जगत की एकता प्रगति पर है। इस प्रकार यह दशक उन घावों को भर सकेगा जिनसे राष्ट्रों का विभाजन गलत आधारों पर हुआ था। यह केन्द्रीमुखी युग का संकेत है।

इस धरती पर एक एवं शक्तिवान् होकर विश्व की जनता अन्तरिक्ष विजय के लिये उत्सुक है। अणु-अस्त्रों के निर्माण व्यय ने तथा अन्तरिक्ष खोज की संयुक्त अभिलाषा ने छोटे-छोटे राज्यों को एकता के तरफ प्रेरित किया है। यह शांति की दिशा में शुभ संकेत है। अणु-शक्ति एवं प्राविधिक ज्ञान की उपयोगिता को अंतरिक्ष खोज में सफलता पूर्वक परिवर्तित कर देना चाहिए। इस दिशा में कुछ प्रगति हुई भी है। इससे मानवता का भविष्य उज्ज्वल होगा एवं सम्पूर्ण संचित शक्ति जिसका प्रयोग युद्ध में होता, वह अंतरिक्ष विजय में ही कम पड़ जायगा। इस पहलू से कहा जा सकता है कि तृतीय विश्व युद्ध की

संभावना निकट भविष्य में नहीं है। तथापि चीनी नेताओं की निराशाजनक मनोदशा एक गम्भीर कारण है। विश्व-शांति को शंका है।

नेहरू, हिमालय और इतिहास

जड़ जगत का सर्वोच्च उन्नत शिखर हिमालय है। वर्तमान चेतन संसार का सर्वाधिक संवेदनशील, शांतिप्रिय एवं संहर्षमय पुरुष श्री जवाहरलाल नेहरू हैं। जड़ व चेतन की सर्वाधिक सर्वोत्कृष्टता इस जगत में भारत के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है। यह संयोग अनोखा है।

नेहरू व हिमालय

भारत की धरती पर यह संयोग एक तथ्य में है। हिमालय का निरन्तर कटता हुआ कण उत्तर भारत के निर्माण में लगा है। हिमालय से प्रसूत नदियाँ इस धरती के चप्पे-चप्पे को जीवन रूपी जल प्रदान करती हैं। हिमालय से टकराया हुआ मानसून इस उप-महाद्वीप को वर्षा प्रदान करता है। इसी प्रकार श्री जवाहरलाल नेहरू के जीवन कोष से रिक्त होता हुआ काल-क्षण वसुन्धरा के सम्पूर्ण मानवता को सींचता रहता है। प्रतिक्षण क्षयग्रस्त हिमालय का शिखर उन्नत ही होता जा रहा है। श्री जवाहरलाल नेहरू का यश व पुरुषार्थ समय के वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता ही जा रहा है। यद्यपि इसमें अनेक मोड़ आये। परिस्थितियाँ विपरीत होती गयीं, परन्तु मनुष्य रूप में श्री जवाहरलाल नेहरू का पुरुषार्थ सर्वदा जयी रहा। हिमालय अपराजित था। उसके शिखरों पर मनुष्यों ने अपने पदचिन्ह बना ही डाले, परन्तु उसकी मर्यादा अक्षुण्य बनी है। भूगर्भशास्त्र के अनुसार हिमालय उठता ही जा रहा है। इसी प्रकार श्री जवाहरलाल की नीतियों को प्राणघातक तथा प्राणांतक धक्का लगा है। उनके भ्रातृत्व व मानववादी स्वरूप की नीतियों को ध्वस्त करने की कोशिश की गयी है। चीनियों ने दुर्गम पर्वतों एवं घाटियों को लाँघा तथा दो सहस्त्र वर्ष की शाश्वत मित्रता

को तिलांजली दे डाला। हिमालय का शुभ्र-मुकुट रक्त रंजित हो गया। श्री जवाहरलाल की जीवन्त आस्था झन्ना उठी। सन् १९५० ई० से ही श्री जवाहरलाल सतत् प्रयत्न में रहे कि चीनियों को गलत रास्ते से जाने से रोका जाय। एशिया व अफ्रीका की एकता कायम रहे। परन्तु, उनके प्रयत्नों ने धोखा खाया। भारत के साथ चीनियों ने विश्वास घात किया। हिमालय को लज्जित किया। परन्तु, सर्वाधिक संताप यदि किसी व्यक्ति को अनुभूत हुआ तो वे हैं श्री जवाहरलाल नेहरू। मर्मांतक पीड़ा में कराह उठे। उस पीड़ा में ही ऐतिहासिक सत्य को मुखरित किये—भारत पर चीन का आक्रमण इतिहास के मोड़ का बिन्दु है। उनके सामने भारत-चीन सम्बन्धों की लम्बी कहानी व इतिहास गुजरने लगा। ढाई सहस्त्र वर्ष पूर्व से १९५६ ई० तक की मधुर स्मृतियाँ याद आने लगीं। इन स्मृतियों के परदे पर भारत, चीन की प्राचीन सभ्यता, फाहियान, ह्वेनसांग के समान शांति यात्री, महात्मा लाओत्से व कन्फूशस तथा महात्मा बुद्ध, महात्मा गाँधी के चित्र घूमने लगे। इसके बाद स्वयं अपना चित्र व व्यवहार तथा चाऊ-एन-लाई और माओत्सेतुंग का व्यक्तित्व व अपना उनसे सम्पर्क घूम उठा। राष्ट्रों-राष्ट्रों तथा मित्रों-मित्रों का यह व्यवहार विचित्र-सा लगा। विश्वात्मा श्री जवाहरलाल तड़प उठे इस व्यवहार को देखकर। वैसे ही तपभूमि हिमालय चीनियों के नग्न ताण्डव से सिहर उठा है। प्रकृति व पुरुष दोनों पागल हो उठे हैं। फिर भी हिमालय और नेहरू की महानता अपने-अपने जगहों पर कायम है। स्वयं श्री नेहरू प्रारम्भिक जीवन से ही प्रकृति प्रेमी रहे हैं। अपने अवकाश को कश्मीर, कुल्लू, देहरादून-घाटी; और दार्जिलिंग घाटियों में बिताते रहते हैं। मुख्य रूप से प्रकृति प्रेम से प्रेरणा ग्रहण करना श्री जवाहरलाल के जीवन के प्रत्येक अवस्थाओं में रहा है तथा है। हिमालय जाने की इनकी भावनाएँ स्वराज्य के पूर्व व पश्चात् बनी हुई हैं। मेरी कहानी

में लिखते हैं कि "हिमालय के शिखर स्वतंत्रता संग्राम में प्रेरणा देते हैं। स्वयं युक्त रहने वाले शिखर मनुष्यों को परवशता के विपरीत प्रेरित करते हैं।" संसार का इतना व्यस्त राजपुरुष शायद ही प्रकृति का इतना प्रेमी होगा। स्वतंत्रता संग्राम के समय भी श्री जवाहरलाल हिमालय दर्शन की यात्रायें अधिकतर बनाते रहते थे। एक अमेरिकन पत्रकार ने लिखा था कि श्री जवाहरलाल की वन व पर्वत की यात्रायें भारत के परम्परागत ऋषियों-मुनियों के प्रकृति साहचर्य व सानिध्य का ही रूप है। श्री जवाहरलाल की आत्मा ब्राह्मणत्व के पुकार के अनुरूप ही एकांत साधन के लिये निरंतर प्रकृति भ्रमण किया करती है। इसी कारण श्री जवाहरलाल नेहरू के आधुनिक प्रवृत्तियों के साथ साथ राष्ट्र का प्राचीन संस्कार भी प्रतिध्वनित होता रहता है। यूरोप के अपने अध्ययन काल में भी प्रकृति दर्शन के निमित्त भ्रमण करते रहे हैं। नार्वे तथा स्वीडेन के खतरनाक वर्फीले स्थानों की यात्रायें करते रहे हैं। स्वीटजरलैण्ड कोलम्बो, जर्मनी इत्यादि स्थानों की यात्रायें पूर्ण प्रकृति सौंदर्य उपासना के ही कारण होती थीं। इस प्रकृति प्रेम ने इनके जीवन को तरोताजा बना रखा है। भावुकता के साथ-साथ भूगर्भ-शास्त्र का ज्ञान इनकी यात्राओं को पूर्ण उपयोगिता मूलक बना देता है। श्री जवाहरलाल की दृष्टि पर्वतों के शिखरों तथा गहन वनों को जहाँ पर देखकर भावविभिभूत हो उठती है, उसी स्थल पर उन पर्वतों के गोद में रहने वाले निर्धन व्यक्तियों के प्रति भी उनके दिल में करुणा उद्वेल देती है। सन् १९५५ ई० में एक बार कुल्लू घाटी में श्री जवाहरलाल नेहरू के मित्र ने उनके पास सेंधा नमक के मामले को रखा। पहाड़ी स्थानों में भारत विभाजन के पश्चात् नमक दुर्लभ वस्तु बन गया था। क्योंकि पर्वतीय नमक पाकिस्तान के हिस्से में पड़ गया है। इस कारण कुल्लू इत्यादि स्थानों पर नमक का वितरण ठीक न हो पाने से जनता को कष्ट था। श्री जवाहरलाल ने आश्चर्य प्रकट

किया कि क्यों नहीं यह प्रश्न उनके पास और पहले भेजा गया? जनता के जीवनो-पयोगी प्रत्येक प्रश्नों पर उनकी पैनी दृष्टि है। यही कारण है कि जब कभी हिमालय देखते हैं तो उनके आगे बर्फों की उज्जवलता, वृक्षों की श्यामलता और खनिज पदार्थों की उपयोगिता तथा पर्वत प्रसूत नदियों के जल से बाँध व विद्युत केन्द्रों की स्थापना की भी संभावनायें घूमती रहती हैं। प्रकृति सौंदर्य को देखकर भावाभिभूत हो उठते हैं। परन्तु, श्री जवाहरलाल के सामने जीवन व जनता से बड़ा कोई आराध्य नहीं है। इस कारण। इनका प्रकृति प्रेम जीवन के समृद्धि करने का हीं अंग है। सन् १९५९ ई० में जब चीनियों ने घुसपैठ के बाद अतिक्रमण प्रारम्भ किया और स्पष्ट हो चला कि हिमालय आक्रांत की स्थीति में है, उस समय श्री जवाहरलाल ने दुनियाँ को, विशेष रूप से चीनियों को बतलाया कि हिमालय हमरा मुकुट व ताज है। मुकुट व ताज से ही दोनों स्थितियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। मुकुट से प्रतिध्वनित होता है कि हिमालय भारत को शोभा है। शुभ्र बर्फ की परतें भारत के भाल को ढके हुए हैं। चांदी को रंग का यह मुकुट है। विशाल व विस्तृत है। सजीव भारत का शिरोभाग मुकुट धारण किये हुए है। यह मुकुट भी साधारण मुकुट नहीं अपितु राज मुकुट है। इसी लिये श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि हिमालय हमारा ताज भी है। ४४ करोड़ भारतियों के निवास स्थान का शिरोभाग हिमालय भारतोय संप्रभुता का प्रतीक है। हिमालय की इतनो सुन्दर राजनीतिक व्याख्या इतने कम शब्दों में होनो मुश्किल है। यह वही कर भी सकता है जिसे देश के कण-कण से प्यार हो तथा जो पर्वत रूपी हिमालय को सजीव स्थिति में पहचाने। यह व्याख्या श्री नेहरू से ही संभव है।

आज दुनियाँ के साम्यवादियों का लगभग पूरा शिविर इस प्रचार में है कि हिमालय की आर्थिक उपादेयता नगण्य है। चीन-भारत की

मित्रता कीमती है। यद्यपि, इस कथन में सत्यांश है कि चीन-भारत की मित्रता कीमती वस्तु है तथापि हिमालय के मूल्य पर कदापि नहीं मित्रता श्रेयष्कर है। इस तथ्य को हिमालय की इस परिभाषा से समझा जा सकता है कि वह भारत की सार्वभौमिकता का अंग है तथा मुकुट भी है। भारत की सुन्दरता, स्वतंत्रता तथा शाश्वत जीवन की अनिवार्यता के लिये हिमालय आवश्यक अंग है। हिमालय की आर्थिक उपयोगिता को भारत के प्राचीन व वर्तमान के विज्ञ पुरुष तथा जन-साधारण समझ चुके हैं। नदी घाटी योजनाएँ, वन सम्पदा तथा खनिज पदार्थ व तेल जैसी वस्तुयें प्राप्त हैं। जल-विद्युत का उत्पादन एवं अक्षय शक्ति-स्रोत हिमालय ही है।

हिमालय के क्षेत्र पर चीनी आक्रमण से श्री जवाहरलाल के मानसिक शक्तियों पर जोरदार धक्का लगा है। मुख्य रूप से विदेश नीति में कठिनाइयां उत्पन्न हो गयीं। श्री जवाहरलाल ने हिमालय के क्षेत्र में वास्तविक मित्रता और सहअस्तित्व की नीति को अपना रखा था एवं है। सन् १९५५ ई० में नेपाल को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनवा दिया है। सन् १८१६ ई० में गोरखों को अंग्रेजों ने हराया था। उस हार के बाद गोरखों ने सिगौली की संधि अंग्रेजों के साथ किया था। यद्यपि मित्रता की बात अंग्रेज भी नेपाल के साथ करते थे, परन्तु जिस स्तर की मित्रता को श्री जवाहरलाल ने प्रदर्शित किया, वह नेपाल के इतिहास का स्वर्णाक्षर है।

अफगानिस्तान के साथ एवं बर्मा के साथ अंग्रेजों ने युद्ध लड़-लड़ कर अपनी नीतियों को स्थापित किया था। श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्टतः तटस्थता तथा सद्भावयुक्त सहयोग और मित्रता को ही नीति के अंग के रूप में स्वीकार किया। १९५४ ई० की तिब्बत संधि इसी तथ्य का प्रमाण है। परन्तु, इन सद्भावों के अतिरिक्त भी चीन ने नफा (नेफा) के क्षेत्र में मेकमोहन पांत को तोड़ा। भारत के क्षेत्रों

को आक्रांत करते हुए अन्तरराष्ट्रीय व्यवहारों को भ्रष्ट कर दिया। इसी स्थल पर श्री जवाहरलाल नेहरू के जीवन के साथ "हिमालय" शब्द जुट जाता है। हिमालय शब्द से निरन्तर उन नीतियों का बोध होगा जिनके चलते रहने से हिमालय आक्रांत हो गया। यथार्थ में श्री नेहरू की नीतियों की स्थापना का यह काल ऐतिहासिक महत्व का है। क्योंकि संसार में सर्वदा से यह प्रचलित रहा है कि किसी भी प्रकार की स्थापना का प्रारम्भ में विरोध होता ही है। सहअस्तित्व, सहकारिता, संसदीय प्रणाली तथा आर्थिक स्वयं स्फूर्ति की नीतियों की भारत ने स्थापना किया। जब सोवियत संघ के राष्ट्रपति व प्रधानमन्त्री हिमालय को लांघकर भारत आये तथा अपनी ऐतिहासिक यात्राओं को पूर्ण किया, उस समय से ही भारतीय नीतियों को पूर्णता प्राप्त हो गयी। क्योंकि हिमालय के सर्वोच्च अंग कश्मीर के सम्बन्ध में रूसी नीति स्पष्ट हो गयी। सुरक्षा परिषद् में रूस ने दो बार निषेधाधिकार भारत के पक्ष में किया। आंग्ल अमेरिकी तथा पाकिस्तानी पैंतराबाजी खत्म हो गयी। रूस ने जिस सच्चाई के साथ कश्मीर नीति में अपने देश का सहयोग भारत को दिया है, यह स्वयं में ऐतिहासिक घटना है। इसके कारण अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में सिर्फ मजहब के आधार पर मांग करना तथा स्वयं अपने यहाँ उत्पीड़न को कायम रखना और वाद-विवाद को जेहाद के बल पर तय करने की मनोवृत्ति को कुंठा लगा। हिमालय के उत्तरी राष्ट्र महान् सोवियत संघ ने हिमालय के दक्षिण में दो विभिन्न परिस्थितियों को देखा। नेहरू के नेतृत्व में भारतवर्ष में तीन मतदान हुए। विश्व में इतना बड़ा मतदान हुआ ही नहीं था। तीन योजनायें लागू की गयीं। परम्परागत समाज को स्वयं स्फूर्ति की स्थिति में लाया गया। सदियों का शोषित यह देश था। इसकी आर्थिक स्थिति ठीक करने का भगीरथ कार्य लगा हुआ है। राज्यों का पुनर्गठन किया गया। कल्याण-

कारी राज्य का दर्शन व्यवहार में लागू हुआ। सहकारिता, सार्वजनिक नियोजन इत्यादि क्षेत्र विकसित हुए। इसके विपरीत पाकिस्तान में सैनिक राष्ट्रपति की पद्धति से बुनियादी जम्हूरियत के अध्यक्ष का क्रम चल रहा है। एक भी निर्वाचन न हो सका। बेहिसाब अमेरिकी सहायता सिर्फ पश्चिमी पाकिस्तान के एक हिस्से के लगभग दो करोड़ व्यक्तियों पर खर्च होती है। असमानतायें आकाश तक पहुँची हैं।

इस कारण भारत के धर्मनिरपेक्ष गणतन्त्र को रूस ने मजहब प्रिय जम्हूरियत वाले पाकिस्तान से कहीं ज्यादे अच्छा समझा। यह सफलता स्वयं श्री जवाहरलाल के व्यक्तित्व से उत्पन्न हुई है। क्योंकि उनकी आस्था एवं कार्य करने की पद्धति सर्वदा मानववादी भावनाओं से ओत-प्रोत रही है। इस कारण इस उपमहाद्वीप में उनका व्यक्तित्व जन-जन के जीवन को प्रभावित कर चुका है। जिन दूरगामी नीतियों को श्री नेहरू लेकर चल रहे हैं उससे मानवता का कल्याण है। परन्तु, राष्ट्र के रूप में भारत विशेष लाभान्वित नहीं हो सकता है। क्योंकि भारत की एकांगी सत्यनिष्ठ नीतियों के नैतिक प्रभाव को समझने में चीन को समय लगेगा। इसके अलावा नेहरू का मानववादी स्वभाव चीनियों के हृदय परिवर्तन को सफलता पूर्वक संपादित कर सकेगा, इसमें संदेह है। चीनियों के अनुसार अब श्री नेहरू नव उपनिवेशवादी हैं। हिमालय पर्वत भी वैसा नहीं है जैसा हम सब जानते हैं। चीनियों के अनुसार हिमालय एवं करोकोरम दो पर्वत शिखर हैं। जब कि कराकोरम सिर्फ हिमालय का एक छोटा-सा अंग है। इस प्रकार स्थिति गम्भीर है। इसमें शासक नेहरू की अग्नि परीक्षा है।

हिमालय व संसदीय लोकतन्त्र

श्री जवाहरलाल संसदीय लोकतन्त्र के प्रबल समर्थक हैं। यथार्थ में कहा जाय तो सत्य ही होगा कि एशिया में श्री जवाहरलाल नेहरू

लोकतन्त्र के संस्थापक भी हैं। ५ जून, १९५४ ई० को मैन-चेस्टर गार्जियन ने लिखा था, "भारतीय संसद एशिया में अपने ढंग की एक आदर्श संस्था है। पेरिक्लस ने कहा था कि एथेन्स हेलास का स्कूल था। इसी प्रकार श्री नेहरू बिना श्लाघा के कह सकते हैं कि देहली एशिया का स्कूल है।" पत्र ने आगे लिखा है कि श्री जवाहरलाल नेहरू निःसन्देह स्कूल के संस्थापक व शिक्षक भी हैं। माइकेल ब्रेचर ने अपनी पुस्तक "नेहरू-ए पोलिटिकल बायोग्राफी" में लिखा है, "एक विस्तृत अर्थ में भारतीय संसद स्वयं एक यन्त्र और प्रतीक है। यह प्रतीक उस सरकार की रचना कर रही है जिसे नेहरू का नेतृत्व प्राप्त है। यन्त्र इस प्रकार का है जिससे वे व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करते हैं जो भविष्य में सत्ता ग्रहण करेंगे। श्री जवाहरलाल नेहरू संसद को ही नीतियों एवं कर्तव्यों का नियामक और सम्पूर्ण जन-मानस की विचार अभिव्यक्ति का स्थान समझते हैं। देश की सम्पूर्ण संस्थाओं को इससे संयुक्त रखते हैं।" संसद के प्रति आस्था श्री जवाहरलालजी के ही शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुयी है। "मैं ऐसी सरकार में आस्था रखता हूँ जो कि सशक्त आलोचनाओं को आदर से देखे तथा प्रति पक्ष का मुकाबिला कर सके। क्योंकि आलोचनाओं के अभाव में जनता व सरकार दोनों खुशामद पसन्द हो जाते हैं। संसदीय यन्त्र का निर्माण ही स्वस्थ्य आलोचना पर हुआ है।" ३१ जनवरी १९५७ ई० को मद्रास की एक आम सभा में प्रधान मन्त्री ने ऐसा कहा था। इस कथन को श्री माइकेल ब्रेचर ने अपनी पुस्तक में इस आशय से उद्धृत किया है कि श्री जवाहरलाल नेहरू का विश्वास संसदीय प्रयोग में दृढ़तापूर्वक कायम है। श्री जवाहरलाल की चिन्तनधारा लोकतन्त्र के स्वरूप व कार्य पद्धति के सम्बन्ध में अत्यधिक स्पष्ट है। यही कारण है कि उनकी आस्था अडिग है। श्री अब्राहम लिंकन के द्वारा प्रस्थापित मत "जनता द्वारा शासन" से श्री जवाहरलाल पूर्ण

सहमत होकर एक कदम आगे हैं। आपकी विचारधारा है कि "जनता द्वारा शासन" के साथ-साथ "जनता द्वारा ही शासन" की व्यवस्था होनी चाहिये। क्योंकि जेफर्सन व अब्राहम लिंकन के उदात्त घोषों के बावजूद अमेरिका इत्यादि जगहों में शासन का स्थान कुछ प्रमुख उद्योगपतियों द्वारा ही नियन्त्रित हो जाता है। इस कारण जनता द्वारा शासन एक उन्नत आदर्श है। व्यवहारतः "जनता द्वारा ही शासन" प्रयुक्त होना चाहिये। इस नीति को व्यवहार में लाने के लिये जनता का आर्थिक आधार बदलना होगा। यहीं पर श्री जवाहरलाल नेहरू अमेरिका के महान कवि, वाल्ट ह्विटमैन से सहमत हैं। कवि ने कहा था—"ओ मित्र, क्या तुमने भी, यह समझा था कि लोकतन्त्र केवल चुनावों के लिये, राजनीति के लिये, और एक पार्टी के नाम के लिये है? मैं कहता हूँ कि लोकतन्त्र का वहाँ केवल यही उपयोग है कि वह वहाँ से आगे बढ़कर आचरणों में मानवों के बीच परस्पर के श्रेष्ठतम व्यवहारों में, और उनके विश्वासों में पुष्पित और पल्लवित हो—धर्म में, साहित्य में, कालेजों और स्कूलों में—सम्पूर्ण व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में लोकतन्त्र हो...।"

श्री नेहरू इसी प्रकार से जीवन के सभी अंगों में लोकतन्त्र को स्थापित करना चाहते हैं। लोकतन्त्र की पद्धतियों में एशिया और अफ्रीका के स्थानों में संसदीय व्यवस्था को ही श्रेष्ठतर या श्रेष्ठतम समझते हैं। क्योंकि इन अर्धविकसित (आर्थिक) क्षेत्रों में अध्यक्षीय लोकतन्त्र तानाशाही के मार्ग पर जा सकता है। इस भावना के अतिरिक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी संसदीय प्रणाली के पक्ष में सहायक हुई। सन् १६१६ ई० से १४ अगस्त १६४७ ई० तक भारत में ब्रिटिश ढंग के सुधार लागू किये जा रहे थे। इन सुधारों में वाइसराय की कार्यपालिका के विकास में उत्तरोत्तर गति आ रही थी। इसके अतिरिक्त भारतीय संप्रभुता ब्रिटिश संसद से ही उन्मुक्त हुई। इस कारण संसदीय

प्रयोग के प्रति स्वाभाविक रूप से आकर्षण श्री जवाहरलाल नेहरू के मन में रहा है। श्री जवाहरलाल की शिक्षा-दीक्षा ब्रिटिश स्कूलों में हुई है। इनके मानस पर संसदीय व्यवस्था की श्रेष्ठता कायम हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक "भारत की खोज" (डिस्कवरी आफ इण्डिया) में पंचायती व्यवस्था का वर्णन किया है। प्राचीन भारत में किस प्रकार सामाजिक न्यायदान होता था और उन व्यवस्थाओं में कहाँ तक पंचायत सफल हुई थी, इस तथ्य ने श्री जवाहरलाल को प्रभावित किया था। संसदीय व्यवस्था को सर्वदा अपने भाषणों में "राष्ट्रीय पंचायत" के सम्बोधन से कहते रहते हैं। पंचायत की भावना, उसका दर्शन तथा उसकी कार्यप्रणाली के श्री जवाहरलाल इतने कायल हैं कि इनका प्रयास यही है कि एशिया व अफीका में "पंचायती व्यवस्था" सही अर्थ में अपनायी जानी चाहिये।

उदाहरणार्थ—न्यूयार्क टाइम्स ने २० मई १९५७ ई० को प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू का भाषण प्रकाशित किया था। उक्त भाषण श्रीलंका की संसद में दिया गया था। उसमें श्री नेहरू ने पड़ोसी देशों से कहा था कि संसदीय व्यवस्था को ही अपनाना चाहिए। विशेष उल्लेख्य है कि बर्मा, पाकिस्तान, नेपाल व स्वयं श्रीलंका में संसद के लिये संकट आसन्न हो चुके थे। इनमें से पाकिस्तान व बर्मा तथा नेपाल से संसद की नींव ही साफ हो गयी। श्री जवाहरलाल की आस्था संसद के प्रति इतनी बलवती है कि वे इस प्रश्न पर कोई भी समझौता संसद के प्रतिकूल नहीं कर सकते हैं। विश्व के सर्वोच्च राजपुरुषों में एक होते हुए भी अपनी भावना को इस प्रश्न पर पूर्ण स्पष्ट रखे हैं। अपनी भावना इस प्रश्न पर छिपा नहीं सकते हैं। यही कारण है कि १९६० ई० में नेपाली संसद विघटन के पश्चात् भारत-नेपाल सम्बन्ध एक अध्ययन का प्रश्न बन गया। श्री

जवाहरलाल नेहरू स्पतष्टतः चाहते थे कि संसद विघटन न किया जाय। परन्तु, एक स्वतन्त्र देश के गृह मामलों में दखल नहीं दे सकते हैं। इस कारण, संसद विघटन का प्रश्न नेपाल का आन्तरिक प्रश्न रह गया। पाकिस्तान में यही हुआ। आज तक पाकिस्तान बालिग मताधिकार के नाम पर चुनाव न करा सका। सैनिक शासन से बुनियादी प्रजातन्त्र की मंजिल तक पाकिस्तान आ चुका है।

हिमालय के दक्षिणवर्ती एशियाई भूभाग में श्री जवाहरलाल नेहरू संसद की स्थापना व उसके माध्यम से आर्थिक पुनर्जागरण का कार्य करना चाहते हैं। इस कारण के पीछे उनकी दूरगामी नीतियाँ हैं। क्योंकि श्री जवाहरलाल नेहरू एशिया के प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने स्वतंत्रता के लिये स्पष्टः आवाज उठायी। उसके लिये ४० वर्ष की दीर्घ अवधि तक संघर्ष किया। उसे प्राप्त भी किया और आज उसकी स्थापना कर रहे हैं। उसकी रक्षा के लिये पुनः संघर्षरत हैं। उनका अनुभव विस्तृत है। उनके व्यक्तित्व से उनका अनुभव निष्पन्न हुआ है। श्री जवाहरलाल नेहरू इस कठिनाई से भी अवगत थे व हैं कि ब्रिटिश ताज की संरक्षणहीनता की अवस्था से एशिया के क्षेत्र में संतुलन पूर्ति की जिम्मेदारी प्रति नागरिकों की अत्यधिक बढ़ गयी है। इस अवस्था में कठोर श्रम व अनुशासन के द्वारा नागरिक निर्वाचित यंत्रों का निर्माण करना होगा। निर्वाचित यंत्रों से सर्वप्रथम जनता के जीवन मान को ऊँचा करना होगा। अन्यथा, सम्पूर्ण उपलब्धियाँ नष्ट हो जायगीं। श्री नेहरू इस भगीरथी कार्य से पूर्ण अवगत थे व हैं। शिक्षा व नियोजन के महत्व पर इसी कारण अत्यधिक बल देते हैं। मध्यपूर्व तथा दक्षिणपूर्व एशिया में ब्रिटेन व फ्राँस के साम्राज्यों के विघटन से शक्ति की रिक्तता व्याप्त हुई थी। इस शून्यता को विभिन्न विचारक विभिन्न दृष्टिकोणों से भरना चाहते हैं। सन् १९५१ ई० में अमेरिका के तत्कालिक राष्ट्रपति श्री आइसनहावर ने

"आइसनहावर डाक्ट्रिन" प्रस्तुत किया। इसके द्वारा अमेरिका ने मध्यपूर्व के एशियाई राष्ट्रों के निवेदन पर साम्यवाद के आक्रमण से उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व अपने पर लिया। अमेरिकी राष्ट्रपति के मतों से यही प्रतीत हुआ कि इस क्षेत्र को साम्यवादी उदरस्थ कर लेंगे यदि कोई शक्ति की व्यवस्था उचित ढंग से न की गयी। वास्तव में यह खतरा एक सत्य है। तथापि, सैनिक दृष्टिकोण से सिर्फ रक्षा पर अत्यधिक महत्व देने से यह सिद्धान्त उपयोगी न हो सका। यद्यपि, इस सिद्धान्त ने सैनिक संधियों की उपयोगिता पर बल दिया। इसके बिपरीत श्री जवाहरलाल नेहरू हिमालय के उत्तरी भाग में मानव कल्याण व संगठनों के निर्माण को सजग होकर देख रहे थे। श्री जवाहरलाल साम्यवाद के खतरों से अवगत थे। परन्तु, आन्तरिक खतरों से ज्यादा अवगत थे अपेक्षाकृत बाहरी खतरों से। श्री जवाहरलाल इसी प्रश्न पर पश्चिमी नेताओं से अलग खड़े हो जाते हैं। इनके सामने दो प्रश्न है। पहला प्रश्न आम जनता की जरूरतों का वास्तविक निराकरण है। दूसरा प्रश्न है स्वयं उत्तरदायित्व बहन करना। कठिनाई यह है कि दोनों प्रश्न समान महत्व व स्तर के हैं। श्री जवाहरलाल उन अर्थशास्त्रियों से सहमत नही हैं कि जिनके अनुसार पहले कुछ वितरित करने को है ही नहीं। इसके अलावा वे राजनीति के संक्रमण काल का बहाना खड़ा-कर राज्य के स्वतः तिरोहित हो जाने की अवस्था की प्रतीक्षा में जनता को बहकाना नहीं चाहते हैं। इसलिये जनता को अपने भाग्य के निर्माण के लिये आगे आना पड़ेगा और साम्यवादी विचार के विपरीत पंचायती स्वरूप के संसद का निर्माण करना होगा। ऐसी वास्तविक व कष्टप्रद तथा स्पष्ट मान्यता के साथ श्री जवाहरलाल नेहरू क्रियाशील हैं। इनके अनुसार यदि प्रत्येक नागरिक सतर्कता पूर्वक अधिकारों के साथ कर्तव्यों का पालन करे तथा सरकार जनतंत्रमूलक

पद्धतियों से सामाजिक न्यायदान करे तो स्वयं क्षेत्र तथा जनता अपनी रक्षा कर सकती है। किसी भी सैनिक गुटबन्दियों में जाने की आवश्यकता नहीं होगी। इसी अर्थ में श्री जवाहरलाल ने पड़ोसी देशों के लिये संसदीय व्यवस्था के विधान को बतलाया था।

इस व्यवस्था की चरितार्थता के लिये श्री नेहरू अथक परिश्रम कर रहे हैं। यद्यपि श्री नेहरू ने उन शर्तों को अभी प्रकट नहीं किया है जिनके आधार पर अभीष्ट वांछित है। तथापि, श्री नेहरू के कार्य व संकेत तथा कुछ छिटफुट भाषण इस मत के समर्थन हैं कि हिमालय व उसके सामानान्तर पर्वत शिखरों व पठारों के दक्षिण-पूर्वी तथा दक्षिण-पश्चिमी भूभाग में संघात्मक सरकार की व्यवस्था होनी चाहिये। कश्मीर के प्रश्न पर श्री नेहरू ने पाकिस्तान के समक्ष प्रस्ताव रखा कि उपमहाद्वीप की रक्षा के लिये पाकिस्तान व हिन्दूस्तान को संघबद्ध को जाना चाहिये। यथार्थ में यह प्रस्ताव राजनीतिक पैंतरा न होकर उनकी विचारधारा का एक सत्यांश है। मलाया के प्रधान मंत्री टंकू अहमद रहमान, बर्मा के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री ऊनू तथा मिश्र के राष्ट्रपति अब्दुल गैमल नासर तथा हिन्द एशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण इत्यादि से इस क्षेत्र की समस्याओं और संभाव्य "संघ" की स्थिति पर विचार-विमर्श श्री जवाहरलाल नेहरू का चलता रहता है। श्री नेहरू के इस क्रियाकलाप व "मतवाद" के पीछे उनकी यही भावना है कि एशिया महान् खड़ा हो सके। पश्चिम के मुकाबिले एशिया अपने क्षेत्र में आम जनता की खुशहाली को स्वयं अपने कार्य से ला सके। ताकि एशिया का माथा उन्नत हो सके। श्री नेहरू यह जानते हैं कि आर्थिक प्रगति के लिये प्रचुर साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। यह प्रचुरता एशिया में वर्तमान है। परन्तु, आपसी फूट व अलग-अलग की व्यवस्थाओं से लाभप्रद उपयोग नहीं हो पा रहा है। औद्योगीकरण तथा विज्ञान व प्राविधिक खोजों ने मनुष्यों

को एक दूसरे का पूरक बना दिया है। श्री जवाहरलाल नेहरू इस तथ्य को समझ चुके हैं कि सहयोग व सहकारिता के ही आधार पर एशिया महान् बन सकता है। विशेष रूप से जब कि यूरोप के राष्ट्र संयुक्त हाट व्यवस्था के अन्तर्गत अपने को रख रहे हैं। इस कारण एशिया के सामने संघबद्ध होने का प्रश्न है। आर्थिक व व्यावसायिक सहकारिता को बढ़ाकर "संघबद्ध" संसदीय प्रणाली को अपनाना चाहिये। मिस्र व श्याम की एकता पर नासिर के बाद यदि कोई राष्ट्र-नायक प्रसन्न हुआ होगा तो वे श्री जवाहरलाल ही होंगे। इसी प्रकार मिस्र व श्याम की अलगता पर उन्हें मर्मान्तक पीड़ा हुई होगी। सह-अस्तित्व व सहकारिता का दर्शन श्री नेहरू ने इसी कारण खड़ा किया। यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति तथा श्री क्रुश्चेव इस मतवाद के अडिग समर्थक हैं। इन सभी स्वरूपों से श्री जवाहरलाल नेहरू का प्रयास रहा है और है कि हिन्दएशिया से मिस्र तक की जनता बड़े-बड़े संघात्मक संगठनों व प्रशासनों के अन्तर्गत कार्य करे। हिमालय व उसके समा-नान्तर पर्वतों तथा पठारों के उत्तरी भागों को इन संभाव्य संघों की चोटी श्री नेहरू समझते हैं। ताकि इनके उत्तर से आनेवाला चीनी साम्यवाद विस्तार न पा सके और ये क्षेत्र शक्तिशाली व सामाजिक न्यायदान पर आधारित होकर स्वयं इनका मुकाबिला कर सकें। हिमा-लय ऐसा लिंटर बन सके जो कि चीनी साम्यवाद के बोझ को सँभाल सके। स्पष्टतः ऐसे संघों के लिये संसद की आवश्यकता होगी। यही कारण है कि संसदीय लोकतंत्र के सिद्धान्तों के पीछे श्री नेहरू की प्रकृति से सम्बन्धित एक गहरा विश्वास व आस्था छिपी है। स्पष्टतः चीनी नेताओं के केन्द्रीकरण के दर्शन के विपरीत श्री नेहरू की प्रणाली स्वत-न्त्रता व सहयोग की धात्री है। उगते हुए एशिया का आशा-बिन्दु है।

श्री जवाहरलाल बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति हैं। आर्थिक, राज-

नैतिक एवं वैज्ञानिक विषयों पर श्री नेहरू की चिंतनधारा सतत गतिशील है। मुख्य रूप से इनकी विचारधारा इतनी विशिष्ट कोटि की है कि समय के लम्बे अव-रोधों ने भी कोई उल्लेख्य परिवर्तन नहीं उपस्थित कर पाया। इस संदर्भ में अमेरिकी लेखक माइकेल ब्रेचर इत्यादि आलोचकों का मत विवेचनीय है। श्री ब्रेचर ने अपनी पुस्तक 'नेहरू: ए पोलिटिकल बायोग्राफी" के "पोरट्रेट आफ ए लीडर" के अध्यापक में लिखा है कि श्री नेहरू की चिन्तनधारा स्पष्ट नहीं है। अपने मत के समर्थन में श्री ब्रेचर ने भारतीय घटनाओं के फलाफल का सहारा लिया है। यथार्थ में यदि देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि श्री नेहरू की चिंतनधारा शायद विश्व में सर्वाधिक स्पष्ट प्रतीत होती है। संसार के कम राजपुरुष इतनी स्पष्ट अपनी विचा-रधारा रखते हैं। सन् १६३६ ई० के अप्रैल में ही श्री नेहरू ने लखनऊ में राष्ट्रीय कांग्रेस के समक्ष कहा कि "हम स्वराज्य क्यों चाहते हैं ? हमारा लक्ष्य क्या है ? इन प्रश्नों का उत्तर स्वयं उन्होंने ही दिया था। श्री नेहरू के अनुसार जनता के जीवन स्तर को सुधारना व ऊँचा करना ही हमारे प्रयत्नों का लक्ष्य होना चाहिए। इस स्थल पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि महात्मा गांधी का प्रत्यक्ष प्रयास "हिन्दू-मुस्लिम" एकता पर था। महात्मा के अनुसार हिन्दू-मुस्लिम एकता होते ही स्वराज्य प्राप्त हो जायगा। इसके साथ ही श्री नेहरू की विचारधारा यह थी कि जीवन स्तर ऊँचा उठते ही स्वराज्य भी प्राप्त हो जायगा तथा आवश्यक एकता भी आ जायगी। इस स्थल पर हम देखते हैं कि आज २६ वर्ष तक श्री नेहरू भारतीय साचे में गांधी व अपनी मौलिकता से गरीबी मूलोच्छेद में ही जुटे हुए हैं। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, राज्यों का आर्थिक सहयोग, जागीर, जमींदारी तथा देशी राज्यों का विलीनीकरण एवं कल्याणकारी कार्य श्री नेहरू की नीतियों

श्री जवाहरलाल की चिन्तनधारा

एवं विचारधाराओं की स्पष्टता के जीवंत प्रमाण हैं।

राजनीतिक रूप से गुटनिरपेक्षता, सामाजिक रूप में धर्मनिरपेक्षता और आर्थिक सहयोग तथा सहकारिता श्री नेहरू की नीतियों के प्रमुख अंग हैं। चीन के दुर्धर्ष आक्रमण के बावजूद श्री नेहरू ने लोकतंत्र के ही माध्यम में अपने विश्वासों एवं कार्यों को दर्शाया है। शायद एशिया में लोकतंत्र व संसद का इतना बड़ा पुजारी पैदा नहीं हुआ है। श्री नेहरू ने भारत की स्वतंत्रता को बटवारे के आधार पर स्वीकार किया। इसके पीछे इनकी यही चितनधारा रही कि एशिया से यूरोपीय आधिपत्य किसी भी मूल्य पर खत्म होना चाहिये। इसी कारण २२ अक्टूबर १९६२ ई० को राष्ट्र के नाम सन्देश में श्री नेहरू ने कहा कि "स्वतंत्रता के लिये कोई भी मूल्य ऊंचा नहीं है।" इस संदर्भ में भारत के बँटवारे को समझना होगा। गोवा के प्रश्न पर श्री नेहरू ने इसी कारण लम्बी प्रतीक्षा के बाद अहिंसा से नहीं अपितु शस्त्र से उसे मुक्त किया। क्योंकि कोई भी कीमत स्वतंत्रता के लिये दी जा सकती है। कश्मीर प्रश्न पर श्री नेहरू ने आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति के मतसंग्रह की बात उठाकर अपनी धर्मनिरपेक्षता की धारा में यथार्थ को और अधिक जोड़ दिया। ब्रिटिश साम्राज्य के विघटन से तथा अन्य परिस्थितियों से श्री नेहरू बहुत पहले ही अवगत थे। वास्तव में श्री नेहरू की चिन्तनधाराओं की स्पष्टता श्री ब्रेचर महोदय ने कागज की उन लकीरों से किया है जो दृष्टि तक तो समानान्तर हैं परन्तु उसके बाद अंतरिक्ष में मिली हुई मान ली जाती हैं। उसी प्रकार श्री नेहरू की नीतियों को दूर तक स्पष्ट समझना होगा। क्षणिक अध्ययन तथा निर्णय ठीक नहीं होगा। क्योंकि श्री नेहरू की अहिंसा बुद्ध से बापू तक है। राज्यदर्शन अशोक से अकबर तक है।

श्री नेहरू की चिन्तनधारा उन्नत स्तर की है इसे इनके विपक्षी भी स्वीकार करते हैं। परन्तु चिन्तनधारा की स्वच्छता के अनुरूप कुछ

कार्यों में असफल उपलब्धि इनके आलोचकों को मौका प्रदान कर देती है। आलोचकों का मत है कि नीतियों के कार्यान्वय में श्री नेहरू दृढ़ता से पेश नहीं आते हैं। प्रशासकीय कठोरता को कायम नहीं रख पाते हैं। इसी कारण समस्यायें उलझी हुयी पड़ी रहती हैं। भाषा-समस्या एक उदाहरण है। भारतीय गणतंत्र इन बीते हुये दशकों में भी इस समस्या को नहीं सुलझा सका है। इसी प्रकार कश्मीर एवं चीन सम्बन्धी नीतियों का प्रश्न है। भारत सरकार खतरे को समय से पूर्व समझ नहीं सकी थी। इसके अतिरिक्त भारत के स्वयं विभाजन का प्रश्न है। श्री नेहरू के निकट सहयोगी एवं ब्रिटिश सरकार द्वारा सत्ता हस्तांतरण के समय के मुख्य सूत्रकार श्री मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने भारत-विभाजन की जिम्मेदारी लीग के पश्चात् पटेल एवं नेहरू पर ही दिया है। श्री आजाद के अनुसार श्री नेहरू को विभाजन के अतिरिक्त "कैबिनेट मिशन" का प्रस्ताव स्वीकार करके भारत-विभाजन को बचाना चाहिये था। भारतीय नेताओं ने लार्ड वावेल के मुकाबिले लार्ड माउण्टबैटन को अधिक महत्व दिया, जिसका कुपरिणाम भारत-विभाजन है। इस प्रकार के कई प्रश्न हैं। इन प्रश्नों का उत्तर घटनाओं ने ही दे डाला है। इन घटनाओं से भारतीय जनता को क्षति पहुँची है। नेतृत्व वर्ग असफल ही रहा। तथापि, जवाहरलाल नेहरू का प्रयास प्रत्येक विषम स्थिति में 'समीकरण' खोज निकालने का है। नेहरू की चिंतनधारा में सिद्धान्त बनाम समीकरण प्राप्ति का प्रयत्न महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

नेहरू का वैज्ञानिक अध्यात्मवाद

जगतगुरु श्री शंकराचार्य ने आत्म तत्व के स्थापन में बतलाया है कि सम्पूर्ण संसार एक विराट आत्मा का ही विभिन्न स्वरूप है। सब में एक ही आत्मा का वास है। परन्तु, इस मत के बावजूद वर्ग व वर्गभेद कायम रहा। मनुष्यों का भेदभाव धर्म प्रतिपादित भी था। परन्तु, श्री नेहरू ने राजधर्म तथा कम से कम अपने में इस सत्य को स्थायी बना दिया है कि सम्पूर्ण मानव उनका स्वयं का रूप है। बीसवीं सदी में अलबर्ट आइन्सटीन ने बतलाया कि सम्पूर्ण चेतन व अचेतन पदार्थों का अंतिम कण "अणु" एक जैसा ही है। इस मत के समान ही श्री नेहरू का "वैज्ञानिक अध्यात्मवाद" प्रतिष्ठित है। श्री नेहरू ने श्री दिनकर की पुस्तक "संस्कृतियों के चार अध्याय" में लिखा है कि "संस्कृति मनुष्यों के रहन-सहन का आत्म तेज है। यह जीवन का प्रकाश है।" इससे स्पष्ट होता है कि श्री नेहरू के अनुसार इलेक्ट्रानों का अणुकेन्द्र पर भ्रमण तथा तद्जनित शक्ति प्रदान करना वैसी ही बात है; यदि विभिन्न मतावलम्बी एकता के "इर्द-गिर्द" अपने जीवन की सत्य आस्थाओं से बधे रहें। इससे जो सभ्यता प्रकाश में आयेगी वह निःसंदेह वैज्ञानिक संस्कृति होगी। इसका नामकरण वैज्ञानिक अध्यात्मवाद संभवतः इस कारण से भी है कि जीव ब्रह्म से निकला है और वहीं मिल भी जाता है। इस कारण जैसे अणु के परिधि पर इलेक्ट्रान घूमता है वैसे ही जीवन भर जीव भी सत्य का परिभ्रमण करता रहे। इस प्रकार मनुष्यों का आपसी भेदभाव दूर हो जायगा। अकबर का दीन इलाही, बापू-विनोबा का सर्वोदय तथा राजनीतिज्ञों का धर्म-निरपेक्षता इसके अन्दर स्थान पाते हैं। सत्य की खोज का यह वैज्ञानिक पहलू है। काका

कालेकर ने और अधिक स्पष्ट किया है। उन्होंने बतलाया है कि वेदों की इस प्रार्थना के पीछे कि "माँ! मैं अन्धकार से प्रकाश के तरफ जाऊँ" वैसा ही भाव है जैसा कि मनुष्य कार्बन। (कोयला इत्यादि) को जलाकर अग्नि पाते हैं। यह जीवन की क्रिया है। प्रो० हाल्डेन ने लिखा है कि श्री नेहरू के देन के प्रति आगामी इतिहास जिस एक तथ्य से ज्यादा प्रभावित होगा वह श्री नेहरू का विज्ञान के प्रति प्रेम और वैज्ञानिक अध्यात्मवाद है। श्री अर्नाल्ड टायनवी ने लिखा है कि "पूर्व के राज्यों में जो धर्म व मजहब तथा आर्थिक तंगियों से लिप्त हैं, श्री नेहरू का दृष्टिकोण वैज्ञानिक तथा आर्थिक आधार से एक स्थायी प्रकाश स्तंभ है।" आने वाली विश्व की पीढ़ी अपनी एकता व समृद्धि को श्री नेहरू के वैज्ञानिक अध्यात्मवाद से ही प्राप्त कर सकेगी। यह श्री नेहरू का ऐतिहासिक योगदान है।

नेहरू, शताब्दियों की संस्था

नेहरू के रूप में युगों की मानवता अवतरित हुई है। प्रियदर्शी अशोक ने कलिंग युद्ध के भीषण रक्तपात को देखकर तय किया कि अब वह खड्ग कभी नहीं उठायेगा। सम्राट अशोक का समय भी उसके साथ था। उसकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। क्योंकि अशोक के समय में भारत के चतुर्दिक अन्य राज्य शक्तिहीन की अवस्था में थे। इस कारण उसकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। परन्तु, श्री जवाहरलाल नेहरू ही एक ऐसे ऐतिहासिक राजपुरुष हुए जिन्होंने शांति का पाठ व कर्तव्य व्यवहारतः प्रारम्भ से ही ग्रहण किया है। श्री नेहरू के दिल में सम्राट अशोक के प्रति अत्यधिक श्रद्धा है। अपनी पुस्तक ''मेरी कहानी" में भगवान बुद्ध तथा उनके शिष्य सम्राट अशोक का वर्णन श्री नेहरू ने जिन शब्दों में किया है, वह उनके भावों का सही चित्र है। शक्ति के प्रतीक तीन सिंहों से युक्त अशोक चक्र का चिन्ह स्वतंत्र भारत के राष्ट्र व राष्ट्रध्वज का गौरव है। इसी से प्रगट है कि श्री नेहरू के दिल में

तथागत तथा उनके सम्राट शिष्य के प्रति कितना आकर्षण है। अहिंसा और सर्व कल्याण की कामना वाले बौद्ध धर्म से श्री नेहरू को विशेष लगाव है। मुख्य रूप से श्री नेहरू के राजनीतिक गुरु महात्मा गांधी का यही अस्त्र रहा भी है। इस अस्त्र से गांधी के नेतृत्व में भारत ने स्वराज्य पाया। इस कारण तथागत के समय से तथा सम्राट अशोक और कालांतर में राष्ट्रपिता बापू के सिद्धान्तों में नेहरू ने अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति को पाया। सुख-समृद्धि के पूर्ण जीवन को छोड़कर स्वतंत्रता तथा समृद्धि। (गरीब जनता के लिये) के लिये आन्दोलन में नेहरू कूद पड़े। श्री विनोबा भावे ने "भूदान पत्रिका" में सन् १९५९ ई० में लिखा था कि जितना निर्णय अबके राज्य प्रधानों को पाँच मिनट में करना पड़ता है उतना निर्णय मुगल बादशाहों को ५ माह में करना पड़ता था। इस प्रकार अबके राजपुरुषों का ५ वर्ष का कार्यकाल मुगल बादशाहों के २० वर्ष के बराबर होता था।

क्योंकि दिल्ली से आसाम तक सरकारी आदेश भेजने में उस समय जितना समय लगता था अब उसके अन्दर महत्वपूर्ण निर्णय व निर्माण हो जाते हैं। श्री नेहरू ने ४५ वर्ष के लम्बे समय में देश के लिये संघर्ष व सेवा को पूर्ण किया है। समय सापेक्षता के साथ-साथ श्री नेहरू ने महात्मा बुद्ध, सम्राट अशोक एवं सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र तथा अर्वाचीन में महात्मा गांधी के विचारों और कार्यों को स्वयं अपने ही जीवन में अपनी मौलिकता से मूर्त किया। भारत तथा विश्व को इनकी देन ऐतिहासिक योग का परिणाम है। इसी प्रकार सम्राट हर्षवर्धन भी अपने समय का प्रभावशाली और सशक्त शासक था। मानव मूल्यों में उसकी आस्था इतनी गहरीथी कि तत्कालीन जनता को उसके शक्ति की केन्द्रीकरणता से कभी सुख के स्थान पर दुःख का अनुभव हुआ ही नहीं। श्री जयप्रकाशजी ने श्री नेहरू के सम्बन्ध में लिखा है

कि भारत का सौभाग्य है कि इतने उदारचेता मानव के हाथ में राष्ट्र की सर्वाधिक निर्णायक शक्ति निहित है। यथार्थ में स्पष्टतः श्री नेहरू में भारतीय राजपुरुषों एवं संत महात्माओं का संगम है। श्री ललित मोहन भाटिया ने अपने विचारों को इस प्रकार रखा है:—"श्री नेह के रूप में भारतीय धरती पर व्यक्तित्व का निर्माण सहस्रों वर्ष पीछे तक नहीं हुआ है। आगे के काल तक ऐसी उज्ज्वल विभूति आ पायेगी इसमें संशय है। बापू के पश्चात् नेहरू का व्यक्तित्व गीता के रचयिता के अनुसार हुआ है।" ऐसे ही मत उन व्यक्तियों के हैं जिन्होंने श्री नेहरू को नजदीक व दूर से देखा है। योजना आयोग के सदस्य श्री त्रिभुवन नरायन सिंह के अनुसार "वास्तव में श्री नेहरू का जन्म इलाहाबाद की सत्यता के अनुरूप है। क्योंकि गंगा, जमुना और सरस्वती का संगम यथार्थ रूप में भी श्री नेहरू के जीवन में भी एकत्रित हुआ है। जैसा श्री नेहरू का स्वास्थ्य, बुद्धि एवं उन्नति गरिमा है उसके अनुरूप ही मानवता से फलवती भी है।"

श्री नेहरू में युगों का अनुभव एकत्र हुआ है। इतिहास के भीषण रक्तपात को अन्य राजपुरुष कागज पर पढ़कर कोई खास महत्व नहीं देते हैं, परन्तु श्री नेहरू ने उसके अनुसार अपने को ढाला है। अंग्रेजों की अफगान नीति से श्री नेहरू ने अपने कार्यकाल में सबक लिया है। चाहे कितनी ही तात्कालिक असफलतायें हों श्री नेहरू सभी राष्ट्रों के साथ यथार्थ में समता और स्वतंत्रता का व्यवहार करते हैं।

श्री नेहरू के व्यक्तित्व में प्राचीन समाजशास्त्री श्री मनु, पश्चिमी हरबर्ट स्पेंसर, प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्री चाणक्य, गांधी व पश्चिमी अर्थशास्त्री एडम स्मिथ कींस; और मार्क्स का अजीब एकात्म छिपा है। राज्यदर्शन में कौटिल्य, मनु, प्लेटो, इब्तखाल्दून, मैकियावेली और रूसो तथा मार्क्स, लेनिन व सर्वोपरि गाँधी की छाप इन पर पड़ी है। विज्ञान के क्षेत्र में प्राणीशास्त्री चार्ल्स डारविन से लेकर अणु शास्त्रीय

अल्बर्ट आइंस्टीन तक इनकी दृष्टिगत खोज है।

श्री नेहरू ने भारतीय भूमि के महात्मा बुद्ध से गाँधी, अशोक से अकबर तक की सम्पूर्ण मानवता को अपने मौलिक स्वरूप में धारण कर रखा है।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अपने राष्ट्र को अर्ध स्वतंत्र और अर्ध गुलाम की हालत से ऊपर उठाने के लिये राष्ट्र एवं मानवहित में अपने ही भाइयों के विपरीत शस्त्र उठाया था। उसी प्रकार संसार में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की कहावत यथार्थ में चरितार्थ न हो जाये, उसके निषेध के लिये अहिंसा के व्रती नेहरू ने भी शस्त्र उठा लिया है। श्री नेहरू के उठे शस्त्र चीनियों को उसी प्रकार दबायेंगे जिस प्रकार गृहयुद्ध के समय अमेरिका की उत्तरी सेनाओं ने दक्षिण की सेनाओं का दबाया था। इसलिये श्री नेहरू ने कहा था कि श्री लिंकन का हाथ (मूर्ति) जो कि उनके टेबुल पर पड़ा है, उनको कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है।

श्री जवाहरलाल नेहरू अन्धकार के बीच प्रकाश स्तंभ है। विश्वात्मा पुरुष श्री नेहरू यथार्थ में शताब्दियों की जीवंत संस्था है।

श्री जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय भूमि पर चीनी आक्रमणों को इतिहास की एक भयंकर घटना बतलाया है। उनके शब्दों में यह इतिहास के पहिले का मोड़ बिन्दु है। यथार्थ में यह मोड़ बिन्दु राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय पैमाने की घटना है। क्योंकि, इतिहास अपना नूतन अंग निरन्तर वैज्ञानिक खोजों, आर्थिक विवेचनों तथा सामाजिक मूल्यों और आक्रमणों से प्रगट करता रहता है। जब कभी इन तथ्यों में नया परिवर्तन होता है उसी समय इतिहास नये शक्ल में चित्रित हो जाता है। सामाजिक मूल्यों व वैज्ञानिक उपल-

इतिहास का मोड़ व कोलम्बो प्रस्ताव

धियों से जो परिवर्तन होता है उसकी प्रतिक्रिया समय के साथ प्रत्येक राज्य व भूखण्ड तक समान प्रभाव क्रमशः छोड़ती जाती है। परन्तु, आक्रमणों द्वारा उत्पन्न प्रतिक्रिया प्रगति को ऋणात्मक रूप में असन्तुलित कर देती है। इस असन्तुलन से विश्व की समस्याएँ सदैव सतह पर कायम रहती हैं।

समुद्र के मार्गों से नयी दुनियाँ का पता लगाना मध्ययुग की एक अच्छी व उत्साहपूर्ण घटना पूरे यूरोप के लिये थी। परन्तु वही प्रयास एशिया व अफ्रीका तथा अमेरिका के लिये गुलामी का प्रारम्भ था। एशिया, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, पूर्वी-द्वीप समूह तथा पश्चिमी द्वीप समूह और अमेरिका के पूरे कृषि, खनिज व कच्चे माल तथा मनुष्यों का उपयोग यूरोप की समृद्धि के लिये उपनिवेशवादी शक्तियों ने किया। इस क्रिया में उन सभी शक्तियों का सहयोग था जिन्होंने मिल-जुलकर स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व का नारा लगाया था। ब्रिटेन की मजदूर संस्था तथा फ्रांस की सरकारों ने भी उपनिवेशों का शोषण किया। इसमें सभी का फायदा था। इसलिये सभी का सहयोग था। दुनियाँ के वैभव तथा वित्तीय आकर्षण का केन्द्र प्रमुख रूप से लन्दन बन गया। पेरिस, हेग, बर्लिन, लिस्बन इत्यादि नगर उसी अनुपात तथा राजनीतिक प्रभुत्व में दुनियां के तथा उपनिवेशों के आश्रय स्थल बन गये थे। औद्योगिक क्रांति ने इन देशों को और चमका दिया। पुनः समृद्धि की आधिक्यता तथा सहजातियों की बस्ती अमेरिका व दक्षिणी अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में होने से यूरोपीय मुक्त व्यापार के महाजनों ने इन स्थानों में पूँजी-विनियोग किया तथा इन्हें समृद्धि बनाया। पुनः अट्ठारहवीं शताब्दी में इतिहास का केन्द्र बिन्दु कुछ-कुछ और पश्चिम तरफ आया। फ्रांस और ग्रेट-ब्रिटेन के प्रतिस्पर्धा तथा अमेरिकी निवासियों की अदम्य स्वतन्त्रता का प्रेम लन्दन के महत्व को न्यूयार्क के तरफ लाने लगा। २ दिसम्बर १६४२ ई० को निश्चित

रूप से शक्ति संतुलन न्यूयार्क के पास चला गया। क्योंकि इसी दिन अणु-विघटन सम्पन्न हुआ। इस संदर्भ में ज्ञातव्य है कि अणु-अस्त्र वे ही बना सकते हैं जिसके पीछे ठोस औद्योगिक प्रतिष्ठान व तैयारियाँ हों। इस प्रकार अमेरिका ने बिश्व श्रेष्ठता के संतुलन को पश्चिम के छोर पर पहुंचा दिया। यह हुआ दो रूपों से। प्रथम रूप में पूर्वी छोर के उन्नत राष्ट्र जापान की रीढ़ को तोड़ कर। हिरोशिमा इसका उदाहरण है। दूसरे रूप में पश्चिमी देशों के तब तक के अगुआ ग्रेट ब्रिटेन के उपनिवेशों के ऐतिहासिक विघटन से,। भारत इत्यादि के स्वतंत्र हो जाने से ग्रेट-ब्रिटेन की आर्थिक व सैनिक शक्ति बहुत ही घट गयी। जर्मनी नाजी दर्शन के द्वारा शक्ति संतुलन को बर्लिन में रखना चाहता था। परन्तु, १९१७ ई० में सोवियत संघ का जन्म हो चुका था। सोवियत संघ अपने परिश्रम तथा मित्र देशों, मुख्यतः अमेरिकी सहायता और पार्टी की दृढ़ता के कारण द्वितीय विश्वयुद्ध तक एक अत्यन्त शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में खड़ा हुआ। विश्व प्रसिद्ध याल्टा सम्मेलन जो कि फरवरी १९४५ ई० में हुआ था, अमेरिका, ब्रिटेन तथा सोवियत संघ के मैत्री का प्रतीक था। रूस और अमेरिका सैनिक दोस्त हुए थे। उस समय जोसेफ स्टालिन ने ऐतिहासिक सत्य को प्रगट किया था। स्टालिन ने कहा था कि आगामी विश्व की शांति रूस-अमेरिका के सहकार पर निश्चित है। इसलिये ब्रिटेन तथा अमेरिका को यह छूट रूस को दे देनी चाहिये कि रूस पोलैण्ड, मध्य यूरोप और चीन के तरफ बढ़ सके। इस वक्तव्य की महत्ता ऐतिहासिक दृष्टिकोण से है। क्योंकि रूस जब द्वितीय महायुद्ध में फँसा था तब ऐंग्लो-अमेरिकी प्रिय पात्र श्री च्यांगकाई शेक ने तुर्किस्तानी सिकियांग को अपने में मिला लिया था। यही भाग आज कश्मीर से सटा हुआ विवादास्पद क्षेत्र है। दूसरे, मंचूरिया का भाग रूस ने बढ़कर अपनेमें मिला लिया था।

यह कशमकश आने वाले विवाद का आधार था। परन्तु, याल्टा सम्मेलन ने शक्ति-सन्तुलन को न्यूयार्क से मास्को के बीच में कर दिया।

द्वितीय महायुद्ध के बाद एशिया अफ्रीका में स्वतंत्रता का युग प्रारम्भ हुआ। आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक कार्य-क्रम आगे बढ़े। इतिहास की पहिया ने न्यूयार्क, पेरिस, लन्दन, बान, मास्को से आगे बढ़कर महत्व को नयी दिल्ली, काहिरा, बेलग्रेड, कोलम्बो, जकार्ता, पेकिंग को दिया। आर्थिक विकास और समृद्धि के लिये कोलम्बो योजना की बैठक जुलाई १, १६५१ ई० को कोलम्बो में हुई। दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया के आर्थिक विकास का यह ६ वर्षीय कदम था। इसी प्रकार काहिरा में एशिया-अफ्रीका एकीकरण का प्रयास हुआ। नयी दिल्ली और पेकिंग ने सहअस्तित्व की घोषणा किया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी आस्था को प्रकट किया और "तटस्थता" की नोति को वेदेशिक सम्बन्धों का आधार बनाया। इसी प्रकरण में एशिया व अफ्रीका के शीर्षस्थ राजपुरुष १६५५ ई० में बांडुंग में मिले तथा एशिया-अफ्रीका के समस्याओं को स्वयं मिलजुल कर तय करने का निश्चय किये।

यूरोप का भी इतिहास कुछ दूसरा चक्कर ले रहा था। श्री जवाहरलाल नेहरू ने एक अक्तूबर १६५५ ई० में एक विदेशी पत्रकार से कहा था कि "उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका का विकास यूरोप से हुआ था। स्कैंडिनेविया, जो आज इतना धनी है, उसका भी विकास दूसरे देशों की मदद से हुआ।" इसके बाद अमेरिकी सहायता यूरोप में आयी। उदाहरणार्थ अमेरिका ने ६,०००,०००,००० डालर से मार्शल योजना के माध्यम से युद्ध जर्जरित यूरोप को बचाना चाहा। अन्य कई प्रकार की मददें अब भी हैं। इनमें प्रतिरक्षा भी सम्मिलित है। रूस ने भी पूर्व के तरफ पाँव बढ़ाया। चीन, वीतमिन्ह, उत्तरी कोरिया,

बाह्य मंगोलिया तथा भारत इत्यादि को भी सहायता दिया और दे रहा है।

इस प्रकार इतिहास बन रहा था। मानवता शांति की आशा में थी। पूर्व व पश्चिम का मिलन सम्भावित था। संयुक्त राष्ट्रसंघ बली हो रहा था। लोगों की आँखें अन्तरिक्ष के तरफ थी। शांति व सहअस्तित्व की बेला प्रकाशमय मालूम हुई। नेहरू का स्वप्न साकार हो रहा था। आर्थिक क्रांति दृढ़ हो रही थी। शस्त्र फेंकने की बातें चल रही थीं। इसी बीच चीन ने भारत पर बर्बर आक्रमण कर दिया। यह पूर्व पूर्व का युद्ध हो गया। नयी दिल्ली, काहिरा, बांडुंग का देश, कोलम्बो इत्यादि स्तम्भित हो गये। अब पुनः स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये महत्व-पूर्ण फैसले न्यूयार्क, लन्दन तथा मास्को के पास चले गये। यही इतिहास के पहिये का मोड़-बिन्दु है। इसी कारण भारतीय प्रधानमन्त्री तड़प उठे। सदियों से जिस ऐतिहासिक परिवर्तन को एशिया व अफ्रीका के राजपुरुषों ने लड़कर प्राप्त किया, उसे चीन ने अपने अविवेक तथा स्वार्थ से नष्ट कर दिया। इस क्षति की पूर्ति उन्हीं हाथों से होगी जिन हाथों ने इतिहास के पहिये को मोड़ा है। आज एशिया व अफ्रीका में स्वतन्त्र राष्ट्रों का समूह बन रहा है। सहस्त्रों वर्षों की पराधीनता ने इन देशों की मानवता को दबा रखा था। यदि इस धरती (एशिया-अफ्रीका) पर किसी चीज की अधिकता थी तो सिर्फ कच्चे माल; परम्परागत औजार तथा अधिक संख्या में अप्राविधिक एव पराधीन मजदूरों की। परन्तु यहाँ से 'पूँजी-निर्माण' एवं 'पूँजी-निर्यात' हुआ ही नहीं। इन कमियों में दो कारण जिम्मेदार हैं। पहला कारण राजनीतिक स्वतन्त्रता का है। दूसरा कारण औद्योगिक क्रांति का है। १९४९ ई० से एशिया-अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका में राजनीतिक स्वतन्त्रता का श्रीगणेश प्रारम्भ हुआ। इसके बाद ही डालर-स्टर्लिङ्ग, रूबल के संघर्ष ने दूसरे कारण को भी दूर करने लगे। एशिया-अफ्रीका

में "पूँजी-निर्माण" भी प्रारम्भ हो गया। जिस प्रकार मार्शल योजना के बाद उठते हुए यूरोप (युद्ध के बाद) ने संयुक्त राज्य अमेरिका से माँग किया कि उसे अब "सहायता नहीं सहयोग" चाहिये। कारण स्पष्ट है। क्योंकि अमेरिका एवं यूरोप में मजदूरी के दर में अन्तर होने से तथा सम्पूर्ण संसार के प्रतिस्पर्धात्मक सहायता के केन्द्र रूपी बाजारों से वस्तुओं के उत्पादन मूल्य एवं खपत के प्रति उन देशों द्वारा विचित्र रुख ग्रहण कर लेने से ऐसी स्थिति आयी है। ऐसी ही स्थिति एशिया एवं अफ्रीका में जल्द आनेवाली थी। युद्धहीनता की स्थिति अपेक्षित थी एवं है। परन्तु जिस प्रकार यूरोप के समृद्धि-सम्पन्न राष्ट्र अपने अथक परिश्रम के बावजूद भी दो युद्धों को यूरोप की धरती से टाल नहीं सके वैसे ही आपसी वैमनस्य के कारण ऐसा लगता है कि एशिया एवं अफ्रीका के राष्ट्र युद्ध को स्वयं यहाँ पैदा कर रहे हैं। समृद्धि योरप में थी अतः टकराव वहाँ हुआ। इस कारण एशिया के राष्ट्र अफ्रीकी भाइयों के सहयोग से कोलम्बो सम्मेलन का आयोजन किये। हिन्द-एशिया, कम्बोडिया, बर्मा, लंका तथा संयुक्त अरब गणराज्य और घाना इस सम्मेलनके आयोजक थे। जैसा कि सम्मेलनके प्रथम विज्ञप्ति से ज्ञात है कि सम्मेलन की इच्छा है कि चीन एवं भारत में आपसी वार्ता प्रारम्भ हो जानी चाहिये। कोलम्बो सम्मेलन ने समझौता कराने की अपनी एकांगी भावना से यह भी नहीं किया कि चीनी आक्रमण के कारण प्रकाश में आ जायें। इसके अतिरिक्त इतनी सतर्कता बरती गयी कि आक्रमणकारी कौन है इसे भी नहीं इंगित किया गया। एशिया अफ्रीका का एका अच्छा है परन्तु उससे भी सर्वोपरि वस्तु सत्य के प्रति आस्था है। सहअस्तित्व उत्तम है। परन्तु आक्रान्त एवं आक्रमणकारी के प्रति एक ही नीति घातक है। संयुक्त-अरब गणतन्त्र के प्रतिनिधि ने अपने देश के अनुभव पर कहा कि आक्रमणकारी को हमले का फायदा नहीं मिलना चाहिये। यह वक्तव्य अर्थ एवं सत्यपूर्ण था।

परन्तु कोलम्बो सम्मेलन का प्रयास इतना ही प्रशंसनीय है कि इसने एशिया एवं अफ्रीका के हित में कार्य किया है। परन्तु; सम्पूर्ण मानवता के समक्ष उक्त सम्मेलन ने कोई न्यायपूर्ण मार्ग को नहीं आलोकित किया है। यथार्थ में ऐसे सम्मेलनों से आक्रमणकारियों को प्रोत्साहन मिलता है। सहअस्तित्व की नीति शांतिकाल में लाभप्रद है। आक्रमणकारी के कदम को सहअस्तित्व के आधार पर टिकाये रखना उसके खूनी इरादे को पुष्ट करना है। एशिया-अफ्रीका के क्षेत्रवाद के नाम पर जिस सम्मेलन को आक्रमणकारी दिखाई ही नहीं पड़ता है उसका इतिहास में कैसा स्थान है ? इसे भावी पीढ़ी समझेगी। तथापि, उक्त सम्मेलन का कुछ प्रभाव हुआ ही है। चीन अपने कपट को अब दूसरे ढंग से प्रचारित करने की कोशिश कर रहा है। चीन के शीर्ष नेता लियो शाओ ची ने कहना प्रारम्भ कर दिया है कि भारत कोलम्बो प्रस्ताव को ठुकरा रहा है। यद्यपि सत्य विपरीत है। चीनी राष्ट्रपति के अनुसार भारत उन स्थानों में अपनी सेना न भेजे जहाँ से विजयी चीनी सेना स्वेच्छा वश हट गयी हैं। नेफा के कतिपय स्थान एवं लद्दाख का वृहत भारतीय भूभाग चीनी कृपा पर छोड़ दिया जाय।

इसके अलावा कोलम्बो प्रस्तावों में भारी असंगतियाँ हैं। चीन-भारत वार्ता प्रारम्भ कराने से ही समस्या का निदान नहीं है। क्योंकि तिब्बत के उदरस्थ कर लेने के बाद ही चीन आगे बढ़ा है। आज भी चीनी प्रकाशन, व्यक्तव्य एवं नकशे सिक्किम, भूटान को गलत ढंग से प्रदर्शित करते हैं। कोलम्बो सम्मेलन को इन देशों की भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थिति स्पष्टतः चीन से प्रकट करा लेना चाहिये था। क्योंकि सीमा-विवाद के बाद भीषण आक्रमण ने तीन क्षेत्रों में समस्या को खड़ा किया है। आज लद्दाख, वाराहोती तथा नेफा का मामला तय होता है। कल चीन सिक्किम, भूटान का प्रश्न पैदा कर देगा। इसमें तर्क यह देगा कि सिक्किम, भूटान के प्रश्न पर

वह कोलम्बो सम्मेलन से बँधा नहीं है एवं था।

कोलम्बो सम्मेलन के समान मोशी (टंगानिका) में एशिया-अफ्रीका के प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ। ये सभी प्रयास ऐतिहासिक समय में हो रहे हैं। इसी बीच मलेशिया संघ की योजना चल पड़ी है। मलय, सिंगापुर, सारावाक, बरूनी तथा उत्तरी बोर्नियो के संगठन से उक्त संघ बनेगा। इसमें चीन एवं हिन्देशिया की असहमति है। संघर्ष की स्थिति है। यह संघ साम्यवाद के विस्तार को रोकेगा। इसके अलावा केन्द्रापकर्षी युग में केन्द्रीमुखी युग का प्रारम्भ है। संघवाद से शक्ति आयेगी एवं अणुयुग में बड़े ही राष्ट्र ज़िंदा रह सकते हैं। यह एक भविष्यगत सत्य है। इसी प्रकार का संघ बगदाद, सीरिया एवं काहिरा में होने जा रहा है। उन्नति एवं क्रांति के ये मंजिल हैं। यथार्थ में चीन के आक्रमण के कई कारणों में यह एक प्रमुख कारण है कि चीन ने स्पष्टतः देख लिया है कि हिमालय के दक्षिण में सिंगापुर से काहिरा तक "संघ एवं संसदवाद" जन्म ले रहा है। इससे ब्रिटिश शक्ति की रिक्तता को पूर्ति हो जाती है। यह एक महान् क्रांति है। इस क्रांति की स्थापना से चीनी दल शाही को धक्का लगेगा। "संघ एवं संसदवाद" के विकास के पहले ही चीन इसे नष्ट कर देना चाहता है। यह इतिहास के उस अध्याय के प्रारम्भ का काल है जिसमें मनुष्यों ने अपनी जीवन प्रणाली एवं अपने पुनीत आश्रमों के लिये प्रयास किया है। तथा जिसे उसी के सजातियों ने नष्ट करने का प्रयास किया है। इतिहास की एक मृदुल गति पश्चिम से पूर्व की तरफ आयी है। चीनी नेताओं के अविवेक से यह खतरा आ गया है। कहीं इतिहास का पहिया घूम न जाय। क्योंकि यह पूर्व एवं सुदूर पूर्व की लड़ाई है।

"भारत-चीन समीक्षा"

भारत के सामने जीवन-मरण का प्रश्न है। आज के कदम इतिहास के निर्णायक हैं। भावी स्वतन्त्र विश्व की सुरक्षा व सभ्यता इस समय के राष्ट्रनायकों व जनता पर निर्भर है। आज का त्याग आने वाले समय का धरोहर है। इस रक्षा की घड़ी में भारत को मुख्य रूप से सोचना पड़ेगा कि उसकी नीतियों के स्वरूप कैसे हों? तथा उन नीतियों की चरितार्थकता कितनी शीघ्र हो? इसके पूर्व भारत-चीनकी सामाजिक क्षमताओं का विश्लेषण समीचीन होगा। आधुनिक युद्धों का खर्चा बहुत ही व्यापक होता है। समाज के प्रत्येक अंग से त्याग व बलिदान की अपेक्षा इसमें होती है। इसके अतिरिक्त शत्रु के वायुयान शक्ति के कारण राष्ट्रों को अपनी आर्थिक केन्द्रों की रक्षा करनी पड़ती है। क्योंकि आक्रमण के ये निशाने बनाये जाते हैं। भारत भूमि पर चीनी आक्रमण ने इस उत्तर दायित्व को बढ़ा दिया है। मुख्य रूप से क्षेपास्त्र की भावी रणनीति आर्थिक प्रतिष्ठानों को पहले ही लक्षित करेगी। नदी घाटी योजनाओं तथा विशाल विद्युत केन्द्रों और स्पात भट्टियों को शत्रु नष्ट करने की कोशिश करेगें। आज भी खुफियागिरी का रोग अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में चल रहा है। इसके अतिरिक्त कपट पूर्ण व नग्न आक्रमण का द्वारा चीन ने खोल रखा है। भारत पर चीनी आक्रमण दीर्घ नियोजन का फल है तथा दीर्घ अवधि तक कायम रहेगा। आक्रमणों के कई कारणों में आर्थिक प्रतिस्पर्धा व समाजवादी समाज रचना के तरीकों में भिन्नता अपना प्रमुख स्थान रखती है। भारत ने विकेन्द्रित अर्थ प्रणाली तथा मिश्रित अर्थ व्यवस्था के द्वारा स्वयं स्फूर्ति अर्थ व्यवस्था की नींव को परिपक्व करने का प्रयास किया है। यह प्रयास प्रगति पर है। परन्तु आर्थिक घटकों का अभाव तथा नियोजन के दौरान में कठिन परिस्थितिओं के अतिरिक्त भयंकर चीनी

दबाव राष्ट्र के सम्मुख है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि चीन एक ऐसा राज्य है जिसकी आर्थिक नीतियाँ लगभग विश्व के सम्पूर्ण राष्ट्रों से भिन्न हैं। चीन का दृष्टिकोण ही अजीब व अलग है। साम्यवादी समाज की रचना में अन्य पहले के साम्यवादी राज्यों से भी चीन का 'मतवाद' भिन्न है। सोवियत संघ तथा यूगोस्लाविया चेकोस्लाविया इत्यादि ने यह स्पष्टतः स्वीकार कर लिया है कि लेनिन तथा मार्क्स के दर्शन व पद्धतियां बदली हुई अवस्था में विवेक के साथ प्रयोग में लायी जानी चाहिये। तथाकथित पूँजीवादी तथा तटस्थ राष्ट्रों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार सहअस्तित्व के आधार से होना चाहिये। परन्तु, चीन का रवैया अत्यंत रुढ़िग्रस्त है। चीनियों ने आर्थिक नीतियों में प्रारम्भिक प्राप्त सफलता के पश्चात् उन्माद का रास्ता पकड़ लिया है।

सन् १९५२ ई० में साम्यवादी चीन ने पूरे देश से जमींदारी प्रथा को खत्म कर दिया। ५० करोड़ के लगभग किसानों में जमीन बाँट दी गयी। ये बातें भारत में भी घटित हुयीं। परन्तु, अन्तर यह था कि भारत में जमींदारों को मुआविजा दिया गया वहीं पर चीन में ऐसा नहीं हुआ। इसके अलावा भारतीय भूतपूर्व जमींदार अपनी वृहत जोतों में भी कायम रहे। उनके वृहत जोतों में कमी क्रमशः होती जा रही है। सन् १९६० ई० के लगभग चकबन्दी और अधिकतम सीमा अधिनियम के अन्तर्गत यह कटौती संभव हो पायी है। इसके विपरीत चीन की भूमि नीति चट-पट निर्धारित और कार्यान्वित हो गयी। इस कार्य में चीन के असंख्य किसानों ने दिलचस्पी एवं उत्साह प्रकट किया। परन्तु, १९५४ ई० में ही ये सभी जमीनें किसानों से छीनकर पुनः सरकार ने अपने कब्जे में ले लिया। सामूहिक कृषि फार्मों की स्थापना की गयी। सन् १९५४ ई० से १९५७ ई० के अन्त तक चीन ने आशातीत सफलता प्राप्त किया। चीन के निर्माता श्री

माओत्सेतुंग ने इस प्रगति को महान् चीन के "महान-उछाल" का प्रारम्भिक प्रयास बतलाया। कृषि के क्षेत्र से उत्पन्न कच्चे मालों की प्रभूत बहुलता से औद्योगिकरण आगे बढ़ सकेगा। इस कारण, रूसी सहायता और देशी श्रम तथा चीनी नेताओं की लक्ष्य प्राप्ति हेतु उत्कट अभिलाषा ने चीन को १९५४ ई० से १९५७ ई० तक एक महान् उपलब्धि के पास पहुँचा दिया। चीन ने १९५२ ई० में ही पूँजीपतियों का पूर्ण उन्मूलन देश के भीतर से कर दिया था। व्यक्तिगत पूँजी और व्यक्तिगत व्यवसाय नाम की कोई भी संस्था चीन में नहीं रह गयी। इस कारण चीन ने एक अत्यन्त ही जटिल संदर्भ में राष्ट्रीयकरण तथा औद्योगिककरण की नीतियों को अग्रसित किया। विदेशी सहायता के नाम पर सोवियत संघ ने भी उदारता पूर्वक हाथ बढ़ाया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी चीन को कठोर संघर्ष का सामना करना पड़ा है। परन्तु, अन्य सभी राष्ट्रों के मुकाबिल में रूस की सहायता इतनी ठोस रही है कि चीन की आर्थिक तरक्की १९५८ ई० तक होती चली गयी। उस तरक्की में जितनी सहायता सोवियत संघ से हुयी है उससे अधिक की सहायता चीन ने स्वयं के प्रयत्नों से किया। इसका कारण चीन की स्वयं दृढ़ता तथा साधनों के एकत्रीकरण में चीन की दत्तचित्तता है।

चीन ने बड़े मनोबल से मंचूरिया का प्रदेश सोवियत संघ से खाली करवाया। इस क्रिया से ही चीनी नेताओं की दृढ़ता तथा राष्ट्रीयता प्रगट है। मंचूरिया का प्रदेश उद्योग-धन्धों और स्पात की भट्टियों का प्रमुख केन्द्र है। जापानी आक्रमण तथा रूसी एकाधिकार के उपरांत यह स्थान चीनी परिश्रम तथा रूसी सहयोग से ही इतना समृद्ध प्रदेश बन सका। उत्तर में मंचूरिया से दक्षिण में क्यांगसी तक के विस्तृत भूभागों में मानव प्रयत्नों ने अन्न तथा अन्य उपज को बढ़ाया। चुआन प्रान्त अन्न के भण्डार गृहों में बदलने लगा। परन्तु, उसी

मोड़ पर चीन ने गलत कदम को उठाया। चीन ने देखा कि "ऊँची उछाल" नजदीक आ गयी। आंकड़ों के दोष से तथा आलोचना इत्यादि के अभाव में चीनी नेता विश्व की स्थिति से अलग होते हुये अपनी जनता से भी दूर जा गिरे। यह समय १९५८ ई० का है। इस समय सोवियत संघ अपनी सामाजिक स्थिति का दृढ़ नींव के कारण वैज्ञानिक खोजों में आगे बढ़ गया। अन्तरिक्ष यानों का युग प्रारम्भ हुआ। कल्पना ने यथार्थ में "ऊँची उछाल" को देखा। अमेरिका, ब्रिटेन तथा अन्य पूँजीवादी राष्ट्र और तटस्थ राष्ट्रों ने बड़े कौतूहलल से सोवियत संघ की श्रेष्ठता को देखा। सम्पूर्ण संसार के सम्मुख रूसी जनता की यह अद्भुत उछाल थी। संसार के सामने चुनौती भी उपस्थित हुयी। चीन ने इसी संदर्भ में आकाश तक जाने से अच्छा एवरेस्ट शिखर पर ही चढ़ जाना समयोचित माना। अभी भी संसार के पर्वतारोहण विशेषज्ञों को शक है कि चीन ने एवरेस्ट की चोटी जीत ली है। लेकिन संसार के ध्यान को चीन ने आकर्षित कर लेना उपयुक्त समझा। इन आकाशीय एवं पर्वतीय उछालों के अतिरिक्त आर्थिक नीतियों में भी "उछाल" के लक्ष्य निर्धारित हुये। चीन ने साम्यवाद के द्वार पर प्रवेश केलिये प्रतीक्षा उचित नहीं समझा। १९५८ ई० में सामूहिक कृषि फार्मों से जमीन लेकर कम्यूनों में वितरित कर दी गयी। यह एक महान् परिवर्तन का समय था। क्योंकि चीनियों की आर्थिक नीतियाँ तूफान की गति से संचालित हुयी हैं। देश भर में बड़े-बड़े बाँध, कल-कारखानें, विद्युत्गृह और कम्यूनों की स्थापना करने में चीनी नेताओं और जनता ने जोश दिखलाला। परन्तु, कम्यूनों की स्थापना में जनता का जोश न होकर नेताओं का जोश ही विशेष उत्तरदायी हुआ। कम्यूनों की स्थापना में चीन ने सोवियत संघ के सलाह को भी अस्वीकार कर दिया। बुनियादी रूप से जिस वस्तु की आवश्यकता कम्यून के निर्माण

में होती है, उसे चीन ने स्वयं की मान्यतावश पर्याप्त समझा। जमीन, जानवर, जीविका के स्थान तथा मनुष्यों की बहुलता और सर्वोपरि कम्यूनों के प्रति चीनी नेताओं की जीवित आस्था एवं रूसी प्रतिद्वन्द्विता ने चीनी नेताओं को कम्यूनों की स्थापना में पहल करने का मौका दिया।

इन कम्यूनों की स्थापना में महत्वपूर्ण कार्य चीन की १९५७ ई० की सम्पन्नता की भूमिका भी है। सन् १९५४ ई० से १९५७ ई० तक चीन ने कृषि के अलावा अन्य मोर्चों पर भी सफलता प्राप्त किया। बायसिकिल, फाउन्टेनपेन, चायना सिल्क इत्यादि वस्तुओं से चीन ने दक्षिणी-पूर्वी एशिया के बाजारों में प्रतिस्पर्धा कायम किया। अफ्रीका तथा पूर्वी यूरोप के देशों को आर्थिक सहायता प्रदान करना शुरू कर दिया। सन् १९५६ ई० में अलबानिया को सहायता देना प्रारम्भ किया। यद्यपि ५५ करोड़ रूबल के लगभग प्रथम आर्थिक किस्त की सहायता जनवरी १९५९ ई० में प्रदान किया। अफ्रीका के समस्त देशों से चीन ने आर्थिक सहकार को बढ़ाया। इस प्रसंग में उल्लेख्य है कि चीन ने अपने प्रभावों का उपयोग एक सुनियोजित पद्धति से किया। राजनयिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक सम्बन्धों की शृंखला को कायम किया।

गृह-नीति के अन्तर्गत 'कम्यून' निर्माण का कार्य तीव्रगति से १९५७ ई० से प्रारम्भ हुआ। १९५८ ई० तक चीन ने समस्त सामूहिक कृषि के फार्मों को 'कम्यून के अन्तर्गत बदल दिया। साम्यवादी दर्शन के अनुसार 'कम्यूनों' को प्रारम्भिक घटक बनाया गया। इसमें सन्देह नहीं कि एक श्रम की धारा चीन के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रवाहित हुयी। चीन स्वच्छ से स्वच्छतर बनता गया। चूहा, कुत्ता, बिल्ली तथा फतिंगा और फुनगी चीनी धरती से साफ कर दिये गये। प्रो० अर्नाल्ड टायनबी ने लिखा है कि बीसवीं सदी की महान् सफलता अन्तरिक्ष

भ्रमण में उतनी नहीं है जितनी कि मनुष्यों की विजय कीटाणुओं के विपरीत संघर्ष में है। चीन ने कुछ वैसा ही दिखलाया। अपने प्राविधिक साधनों की कमी से चीन अन्तरिक्ष अभियान में 'उछाल' नहीं लगा सका है। परन्तु कीटाणुओं के संघर्ष में धरती पर के अन्य राष्ट्र चीन की तुलना नहीं कर सकते हैं। इसी संघर्ष के साथ-साथ चीनियों ने अपनी परम्परा के अनुसार बड़े-बड़े बाँध बाँधना प्रारम्भ किया। इन कार्यों में इन्हें सफलता भी प्राप्त हुयी। प्रकृति व पुरुष के विपरीत इनके संघर्ष की अनोखी कहनी है। 'कम्यूनों' की रचना अर्धसैनिक ढाँचे के रूप में प्रारम्भ हुयी है। इन 'कम्यूनों' में पार्टी संगठन, प्रशिक्षण, पुराने मतों का परिवर्तन (ब्रेन वाशिंग) तथा सम्पूर्ण उत्पादन (ओभर हाल प्रोडक्सन) और सैनिक अभ्यास एवं खुफियागिरी की दीक्षा प्राप्त होती है। चल एव अचल सम्पत्ति 'कम्यून' की होती है। मनुष्यों, औरतों तथा काम करने लायक बच्चों का कार्यविभाजन तय होता रहता है। भोजन, विश्राम, चिकित्सा एवं मनोरंजन सामूहिक होता है। व्यक्ति स्वातन्त्र का नामोनिशान नहीं रखा जाता है। वर्तमान के संघर्ष के बावजूद चीन तथा भारत की परिस्थितियों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। चीन का संदर्भ विदेशी ताकतों से १०६ वर्ष तक रहा है। गृहयुद्ध एवं जापानी आक्रमण से चीन की अर्थनीति ध्वस्त हो गयी थी। इसके कारण मुद्रास्फीति वहाँ पर आ गयी। परन्तु; चीनी साम्यवादी नेताओं ने अपने समय में चीन को पुनः एक शक्ति के रूप में खड़ा कर दिया। आज चीन आस्ट्रेलिया, कनाडा, लंका, हिन्द-एशिया, फ्रांस, ब्रिटेन के मालों का प्रमुख ग्राहक बन गया है। पूँजी-निर्माण कर एशिया एवं अफ्रीका में ऋण प्रदान कर रहा है। अरब जगत में भारतीय मालों के मुकाबिले सस्ता सामान बेचने का प्रयास कर रहा है। इसके अलावा कोरिया, हिंदचीन, वियतनाम, तिब्बत एवं भारत के साथ जंग ठाने हुये है। यह एक अजीब स्थिति व प्रश्न है।

भारत के मुकाबिले चीन में न तो बढ़िया रेल लाइन है तथा न तो अच्छी नदियाँ हैं और न ही उसके पास विश्वबैंकों का सहयोग है। इसके बावजूद चीनी सैनिक तैयारी विश्वशांति में धूमकेतु के समान है। भारत के साथ चीन का झगड़ा आर्थिक दर्शन का संघर्ष है। भारतीय नियोजन की सफलता ही चीनी आक्रमण का उत्तर है।

———

हिमालय की खोज

प्रकृति की बनावट ने हिमालय को भारत के लिये ही बनाया है। हिमालय की नदियाँ, उपजाऊ तथा रमणीक स्थान और हरे-भरे जंगल एवं मानसूनों का रुख भारत के ही तरफ है। तिब्बत तथा पामीर के पठार हिमालय के उत्तर में फैले हैं। परन्तु, जितना लाभप्रद हिमालय अपने दक्षिणी देशों के लिये है उतना ही अलाभकार तिब्बत तथा सिंकियांग प्रदेशों के लिये है। इस तथ्य को इन देशों के करोड़ों निवासियों ने अपने-अपने जीवनकाल में महसूस किया है। इसी तथ्य से इन मैदानों तथा पठारों की सभ्यताओं का जन्म हुआ है। विश्व के समस्त भूभौतिक शास्त्री, भूगर्भ शास्त्री एवं भूगोल शास्त्रियों तथा इतिहासवेत्ताओं ने अपने-अपने लेखों और अनुसंधानों में इसी सत्य का अनावरण किया है। परन्तु, चीनियों ने प्रकृति तथा पुरुष के एकत्रित ज्ञान को चुनौती दिया है। क्योंकि चीनियों ने मस्तिष्क-परिवर्तन (ब्रेन वाशिंग) के मार्ग का अनुसरण किया है। चीनियों के प्रस्ताव, नक्शे तथा सैनिक अभियानों से इस क्षेत्र में नये मत का बलात् सृजन हुआ है। चीनियों के प्रयास मूर्त रूप धारण कर रहे हैं। सन् १९६२ ई० के २० अक्तूबर के आक्रमण से ही सहस्रों वर्गमील भारतीय भूभाग उनके कब्जे में चली गयी। पर्वतीय जमीन, जानवर, जंगल और जीवों पर बलात् कब्जा कर चीनी नेता अपने चीनी राज्य के पुष्पवाटिका में नये पुष्प लगाना चाहते हैं। इनका यह मनोरथ तिब्बत और तुर्किस्तानी सिंकियांग प्रदेशों के अपहरण से पुष्ट ही हुआ है। द्वितीय महायुद्ध के दौरान में स्वर्गीय स्टालिन ने अमेरिकी राष्ट्राध्यक्ष श्री रूजवेल्ट तथा ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री चर्चिल से याल्टा सम्मेलन के दौरान में चीनी विस्तारवाद को बतलाया था। श्री स्टालिन के अनुसार तुर्किस्तानी

सिकियांग से चीनियों को हटाना चाहिये था। उस समय चीन में मार्शल च्यांग काई शेक का शासन था। उन्हें आंग्ल-अमेरिकी समर्थन उस समय प्राप्त था। इस कारण चीन ने आगे बढ़कर कब्जा कर लिया। यथार्थ में कश्मीर के सीमागत विवाद की वहीं से भूमिका प्रारंभ होती है। चीनियों ने सन् १९५१ ई० से तिब्बत में घुसपैठ कर उसे अन्ततोगत्वा हड़प लिया। फिर नक्शों के आधार से लदाख की तरफ बढ़े। रेडफ्लैग पत्रिका के माध्यम से नवउपनिवेशवाद के विचार को जन्म दिया। धीरे-धीरे अन्य प्रचार के माध्यम से पूरे लदाख के भाग पर सैनिक आक्रमण ही कर दिया। लदाख के भू-भाग पर कब्जा बना बैठे हैं। इस प्रकार चीनियों ने उत्तरी क्षेत्र के भाग पर अपना दखल कायम किया। ट्रांस हिमालय के भाग के मध्य क्षेत्र में भी विवाद को जन्म दिया है। सन् १९५९ ई० में सर्वप्रथम चीनी सेनायें बाराहोती क्षेत्र में ही दिखलायी पड़ी थीं। यह चीनियों का आक्रमण था। परन्तु, कुछ कारणवश उनको वहाँ से हटना पड़ा। चीनियों की मांग है कि बाराहोती जंगल के क्षेत्र में चीन व भारत की सेनायें अपना कब्जा न बना सकें। यथार्थ में यह चीनियों का प्रथम आक्रमण तथा प्रथम राजनीतिक पैंतरा था। भारतीय भूभाग में ही 'बेड़ा राज्य' या शून्य क्षेत्र बनवाना इनका मन्तव्य रहा है। इस सन् १९६२ ई० के आक्रमण में यद्यपि यह क्षेत्र चीनियों की गतिविधि से शून्य सा ही रहा है। चीनी माँगों के अन्तर्गत शिवालिक पर्वतमाला का एक बड़ा हिस्सा इस क्षेत्र में भी आ जाता है।

भारत के विवाद में तीसरा क्षेत्र सिक्किम से प्रारम्भ होता है। यह क्षेत्र सिक्किम, भूटान तथा उपसी (नेफा) से संयुक्त है। इस क्षेत्र में भारत की वैध सीमा तिब्बत तथा भारत के बीच में मैकमहोन पांत मानी जाती है। तिब्बत पतन से भारत सरकार ने इसे ही चीन तथा भारत की सीमा रेखा के लिये प्रस्तुत किया। यह सीमा रेखा जल-

विभाजन के अन्तरराष्ट्रीय मान्यता पर आधारित है। इसी के साथ साथ ज्ञातव्य है कि भारत तथा तिब्बत के बीच हस्ताक्षरयुक्त १९१४ ई० का त्रिदल सम्मेलन का पत्र भी है। उक्त सम्मेलन शिमला में हुआ था और चीन भी उसमें एक सदस्य था। चीन ने बर्मा के साथ भी समझौता कर लिया है। परन्तु भारत के सुवनसिरि, कामेंग, लोहित तथा तिरप के पूरे क्षेत्र में भी चीनियों की गलत मान्यता है। इस पूर्वी क्षेत्र में थागला रिज से लांगजू तक सीमा को गतिशील बनाये रखे हैं। इनकी मांग फूटहिल्स के नीचे वाले भूभाग में नहरकटिया तक आ जाती है। यद्यपि, कोलम्बो नीति के अनुसार ये अपनी सेनाओं को मैकमहोन पाँत के उत्तरी भूभाग तक ले जाने को तैयार हैं। इस नीति में थांगला दर्रा और लांगजू का क्षेत्र अपवाद रखे हैं। चीनियों का कोलम्बो नीति के अनुसार सेनाओं का पीछे हटाना कोई आधारभूत नीति नहीं है। क्योंकि इसे ये सिर्फ वार्तालाप का आधार मान रहे हैं। इसके अलावा वर्त्तमान नियंत्रण रेखा और उचित नियंत्रण रेखा का प्रश्न अभी उठाये हुये हैं।

इस प्रकार लद्दाख से लांगजू के हिमालयवर्ती क्षेत्र को चीनियों ने संघर्षमय बना रखा है। इस संघर्ष-भूमि को चीनियों ने तीन खण्डों में बाँट रखा है। भूमिखण्डों को तीन भाग में बाँट कर इसे कई काल-खण्डों में किया है। सन् १९५६ ई० में चीनियों ने आधिकारिक दावा पेश किया था। इसके बाद सन् १९६० ई० में नया दावा पेश किये। ६ नवम्बर १९५९ ई० की स्थिति में चीनियों ने अतिक्रमण को वैधता प्रदान करने का प्रयास किया। इसके बाद भारतीय प्रयासों एवं लांगजू इत्यादि स्थानों में महामारी आदि से चीनियों ने कुछ स्थान खाली कर दिया था। इस प्रकार ८ सितम्बर १९६२ ई० की नियन्त्रण रेखा आती है। इस रेखा को भी चीनियों ने भंग कर २० अक्टूबर १९६२ ई० को भारतीय भूभाग पर वृहत एवं बर्बर सैनिक अभियान कर दिया। लद्दाख

प्रांत में काफी अन्दर के इलाके में चीनियों ने दखल जमा लिया। यद्यपि अक्साई चिन सड़क का निर्माण २० अक्टूबर १९६२ ई० के आक्रमण से ८ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। दौलतवेग ओल्दी से दमचोक की सीमा में लद्दाख का क्षेत्र चीनियों के आक्रमण में प्रभावित हुआ है। इसके अलावा लगभग ४५ महत्व की चौकियों पर नियन्त्रण कायम करने में सफल हो सके हैं। कोलम्बो नीति के अनुसार चीनी सेनायें सैनिक ठिकानों से हट जायँगी। २० किलोमीटर का शून्य क्षेत्र घोषित होगा। ऐसी ही दुर्गति पूर्वी क्षेत्र में चीनियों ने किया है।

सेला दर्रा से अकस्मात् प्रगट होकर चीनियों का बोमदिला तक का बढ़ाव सैनिक अध्ययन का प्रश्न है। धोखा, प्रपंच एवं शत्रुतापूर्ण कार्यवाही के नाम पर इस अभियान को महत्वहीन नहीं किया जा सकता है। इस संदर्भ में विशेष उल्लेख्य है कि इन गहनतर पर्वत अंचलों में बृहत् वाहिनी का संचालन किस प्रकार से चीनियों ने किया? ज्ञात मार्ग को त्याग कर कबीलों के पगडण्डियों से तोपखाना ले आना और शत्रु-प्रदेश में सेना को मुख्यालय से राजमार्ग काटकर अलग व असहाय बना देना चीनियों के रण कौशल का प्रतीक है।

इसके अलावा चीनियों ने २८ दिसम्बर १९६२ ई० को घोषित किया कि पाकिस्तान के साथ संधि होने जा रही है। यथार्थ में चीन-पाकिस्तान के बीच कोई सीमा समस्या ही नहीं है। पाकिस्तान ने कश्मीर में अनधिकृत भूभाग के संबंध में चीन से वार्तालाप चलाया है। गिलगित क्षेत्र के संबंधित भाग, हुंजा और सरहदी भाग से चीनी तुर्किस्तानी भाग की समस्या जिसे स्वयं चीनी पैदा किये हैं, पाकिस्तान निबटा कर कानूनी मालिक बन जाना चाहता है। यद्यपि पाकिस्तान के हस्ताक्षर से चीन-पाकिस्तान की संधि वैध नहीं होगी, तथापि "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाले मत के देशों के लिये इससे सुनहला अवसर कहाँ और कब उपलब्ध होगा? इतिहास में ऐसे अवसर कम नहीं हैं।

पोलैंड ऐसे यूरोपीय राष्ट्र को उसके प्रबल पड़ोसियों ने धीरे-धीरे बाँट डाला। आज पोलैंड का जो स्वरूप है वह कल के शक्ल से छोटा ही है। यही स्थिति आज फिनलैंड की है। पूर्वी यूरोप के कई देश धीरे-धीरे छोटे हो गये। यद्यपि इस परिस्थिति का जन्म दो महायुद्धों ने किया है तथापि सबल राष्ट्रों का दबाव आज भी जारी है। बाल्टिक तट के राष्ट्र ऐसे ही हैं। उनके अस्तित्व का खतरा बना हुआ है। रूस-अलबानिया के कई मतभेदों में जो तात्विक मतभेद है वह अलबानिया के स्वयं अस्तित्व के खतरे से है। ऐसा मत स्वयं अलबानिया के प्रधान मंत्री ने व्यक्त किया है। इसे अलबानिया का पत्र 'तिराना' अप्रैल १९५९ ई० को प्रकाशित किया है। अलबानिया के नेता होक्सा यद्यपि इसे स्पष्टतः व्यक्त नहीं कर पा रहे हैं तथापि यह भय उन्हें बना हुआ है। अप्रिल १९५९ई० में तथाकथित यूगोस्लाविया जासूस काड के सुनवाइयों में ऐसा मत व्यक्त किया गया था कि बाहरी शक्तियाँ अलबानियाँ के शासनतन्त्र को उलट देने के ताक में है। यथार्थ में राज्यों का विलीनीकरण दो प्रकार से होता है। सीमान्त राज्यों को बड़ी शक्तियाँ पहले कमजोर करती हैं। छोटे व कमजोर राज्यों में शासन तन्त्र को बदल कर अशांति लायी जाती है। फिर बढ़कर सैनिक सहायता की जाती है। इसके बाद यदि उचित हुआ तो उक्त राज्य को उदरस्थ कर लिया जाता है। यही कारण है कि दिसम्बर १९६२ ई० में पूर्वी-बर्लिन में विश्व साम्यवादी सम्मेलन में श्री निकिता क्रुश्चेव ने घोषित किया कि सोवियत सब समीपवर्ती राज्यों के उदरस्थ करने का इरादा नहीं रखता है। अप्रैल १९५९ ई० में श्री होक्सा ने यह भय एक प्रकार से प्रगट किया था। श्री क्रुश्चेव विश्व में अपनी उदारता के लिये विख्यात हैं। इसी कारण विश्व साम्यवादी सम्मेलन में उन्होंने स्पष्टतः ऐसी आशंकायों को भ्रमपूर्ण घोषित किया। यह विषय इतिहास एवं राजनीति तथा भूगोल के विद्यार्थियों के लिये अध्ययन का है

कि किस प्रकार सोवियतसंघ का आकार-प्रकार बढ़ता चला गया है।

चीनियों ने मंचूरिया प्राप्ति के बाद उत्तरी कोरिया में घुस पैठ किया। लम्बी लड़ाई के बाद कोरिया को दो फांकों में बटवाया दिया। उत्तरी के एक भाग को मुआविजा के रूप में स्वाभाविक रूप से दबा लिया। मंगोलिया के अन्दरीय भाग को हड़प लिया। रूसी सीमा को भी अधिकृत करने का उपक्रम किया। वियतनामके हिस्से को दबा लेने की स्थिति तैयार कर लिये हैं। उत्तरी वियतनाम के हिस्से को कुछ अंश में दबा लिये हैं। यही नीति बर्मा की भूमि के साथ किये हैं। तिब्बत को पूरा ही उदरस्थ कर लिये हैं। चीनी तुर्किस्तानी तथा रूसी सरहद अपनी सीमा में प्रदर्शित एवं नियंत्रित कर लिये हैं। रूस-चीन मतभेद का यह महत्वपूर्ण कारण है। इसके अलावा भारतीयभूभाग के दौलत-वेग ओल्दी से दमचोक तक के लद्दाखी इलाके को कब्जा कर लिये हैं। नेफा इलाके के धोला, थागलारिज एवं लांगजू को अपने नियंत्रण में कर लिये हैं।

यद्यपि भारतीय भूभाग को निगलना सम्भव नहीं है। तथापि राजनीति और युद्ध में निगलना और उगिलना के अतिरिक्त है ही क्या? यदि भारतीय सीमा दृढ़ राष्ट्रीय विचार से रक्षित न की गयी तो देश की दुर्दशा अवश्यंभावी है। भारत अपने मित्रों एवं शुभ-चिंतकों की सदाशयता को भुला नहीं सकता है। परन्तु, सिर्फ मित्रता के धोखे में राष्ट्र अपने को रख नहीं सकता है। यह तथ्य सर्वविदित हो गया है कि आगामी दुनियाँ सिर्फ स्वतंत्र जाति के समुदाय की हो रहेगी। श्री अब्राहम लिंकन ने जो स्वप्न सदियों पूर्व देखा था कि संसार में अर्ध-गुलाम तथा अर्ध-स्वतंत्र समाज की भयावह स्थिति खत्म होनी चाहिये; उसकी पूर्ति में अब विलम्ब नहीं ही है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रों का सम्मान व प्रभुता स्वयं उनके आकार और उत्पादन शीलता पर निर्भर करेगा। इस कारण आज यूरोप के राष्ट्र

सिमिट कर महान् यूरोपीय संघ के निर्माण की चेष्टा में हैं तथा महान आकार व उत्पादन क्षमतावाले सोवियतसंघ का मुकाबिला करना चाहते हैं। इस पृष्टभूमि में पश्चिमी राष्ट्र भारत का हितचिंतन करते हुये भी भावी महान् भारत से घबड़ा उठते हैं। नाना प्रकार के फार्मूले का आविष्कार करके भारत के शक्ल को पाकिस्तान से संतुलित करना चाहते हैं। इस प्रयास के प्रमाणस्वरूप कश्मीर घाटी के विवाद को समझा जा सकता है। कश्मीर घाटी पर संयुक्त प्रशासन की नीति इसी योजना का अंग है। जल, विद्युत, खान, कारखाना, खेत, एवं बाँध तथा परिवहन और वस्तु (कमोडिटी) पर संयुक्त नियंत्रण व्यवहार्य है। परन्तु, सार्वभौम राष्ट्र के अंग पर संयुक्त-नियंत्रण की योजना हास्यास्पद के अतिरक्त और क्या है? भारत एक अविकसित राष्ट्र है। अभी विकास के क्रम पर है। पाकिस्तान भी अविकसित राष्ट्रों के अंतिम पंक्ति में है। अमेरिका तथा ब्रिटेन जो चरमोत्कर्ष को देख चुके हैं और चरमोत्कर्ष पर हैं भी, इन अविकसित राष्ट्रों को ऐसी नीति के अतिरिक्त देंगे भी क्या?

आज भारत के साथ बहुमुखी खतरा है। हिमालय के क्षेत्र कश्मीर से कामरूप आसाम तक षडयंत्र की लहर है। हिमालय के द्वार संन्यासियों एवं यात्रियो तथा इक्का-दुक्का सैनिक आक्रमणकारियों द्वारा प्रयोग में लाये गये हैं। परन्तु, कभी भी सैनिक लोग सन्यासी के भेष में आक्रमण करने नहीं आये थे। यह भारत के सम्पूर्ण जीवन का अनुभव रहा है।

पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान का संबंध ज्यादातर अमेरिका एवं ब्रिटेन के अन्तर निहित द्वन्द का परिणाम है। १९४५ व १९४६ ई० के

सुदूर पूर्व की अमेरिकी नीति

बीच भारतीय जननायक कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव पर विचार कर रहे थे। परन्तु, लार्ड माउन्टबेटन के व्यक्तित्व ने लन्दन के संकेत

पर भारत विभाजन की नीति को चरितार्थ किया। संयुक्त संघात्मक भारत से विभाजित भारत तक की नीतियों में अमेरिका तथा ब्रिटेन के स्वार्थों तथा हितों का पैंतरा छिपा हुआ है। द्वितीय महासमर के पश्चात् ब्रिटेन परावलम्बनं की तरफ झुक गया। अमेरिका उसका बाजार कब्जा करते जा रहा था। ब्रिटेन ने अपनी समझ से भाँप लिया था कि अविभाजित भारत को अमेरिका अपने प्रभाव में कर लेगा। इसीलिये उसने विभाजन के प्रस्ताव द्वारा अपने हितों को संरक्षण प्रदान किया। इसी संदर्भ में अमेरिका एवं चीन का संबंध अध्ययन करने योग्य है। १८४० ई० के अफीम युद्ध से १९४९ ई० तक अमेरिका का सम्बन्ध चीन के साथ रहा। चीन के साथ उस वक्त आठ पश्चिमी शक्तियाँ व्यापार करती थीं। उनमें ब्रिटेन प्रमुख था। परन्तु १८४४ ई० में मकाओ के पास वंधिया नामक संधि चीन व संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच हुयी। उक्त संधि के बाद से अमेरिका का प्रभाव चीन में बढ़ता गया। सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं राजनैतिक सम्बन्ध बढ़ते गये। ४२ करोड़ डालर के लगभग अमेरिकी पूंजी सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कार्यों के लिये चीन में व्यय की गयी। लगभग १० विश्वविद्यालय अमेरिका द्वारा चीन में स्थापित किये गये। द्वितीय महायुद्ध के दौरान में लगभग ५ हजार मिलियन डालर की मदद अमेरिका ने चीन को दिया। परन्तु, विदेश सचिव अचेसन तथा राष्ट्रपति ट्रुमन चीन को साम्यवाद से न बचा सके। आज अमेरिकी व्यापार चीन से बन्द है। अमेरिका की नीति को जबरदस्त धक्का लगा और वह असफल सिद्ध हुयी। सदियों की नीति टूटकर धाराशायी हो गयी और वह न तो अपने हितों को बचा सकी तथा न तो अपने किये गये कार्यों को स्थायी रख सकी। यथार्थ में इसके पीछे साम्यवादी प्रहार ही है। परन्तु, उससे भी बड़ा कारण स्वयं अमेरिकी नीति है। अमेरिका बड़ी उदारता से घोषित करता

था कि उसका द्वार चीन के लिये खुला है। परन्तु स्वयं चीन ने उसे जबरदस्ती के साथ बन्द कर दिया। इस पराजय का प्रारम्भ याल्टा सम्मेलन से होता है। मार्शल स्टालिन ने श्री चर्चिल तथा श्री रुजवेल्ट को खुश करके बाहरी मंगोलिया को चीन से अलग रखने में, पोर्ट आर्थर तथा पोर्ट डेइरेम और चीनी पूर्वी रेल मार्ग एवं दक्षिणी मंचूरिया रेलमार्ग पर रूसी प्रभुत्व को स्वीकृत करा लिया। श्री जान फास्टर डलेस के अनुसार मंचूरिया में भारी मात्रा में जापानियों ने शस्त्र जमाकर रखा था जापान पतन के पश्चात् भी लड़ने के लिये वे सामान इकट्ठा किये थे। यही शस्त्र व सामान मात्सेतुंग के हाथ लग गया। उस समय टी० भी० सुंग जो कि राष्ट्रवादी चीन के प्रधान मंत्री थे, अगस्त १९४५ में रूस से संधि कर आये थे। उक्त संधि ने याल्टा निर्णय को पुष्ट कर दिया। मि० टो० भो० सुंग की मास्को यात्रा अमेरिकी विदेश विभाग की प्रेरणा से हुआ था। यही प्रेरणा पूर्णरूप से मार्शल च्यांग काई शेक एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के लिये घातक सिद्ध हो गयी। क्योंकि जब राष्ट्रवादी सरकार ने मंचूरिया से कम्यूनिस्टों के निकालने का फैसला किया उस वक्त मंचूरिया पहुंचने का एक ही रास्ता था। वह रास्ता हवाई जहाज का था। बाकी सभी समुद्री व रेल मार्ग रूस द्वारा बन्द कर दिया गया था। इस स्थिति में राष्ट्रवादी सरकार उलझ कर गिर पड़ी। प्रतिष्ठा एवं पैसा का अपूरणीय क्षति हुयी। सर्वोपरि, राष्ट्रवादी चीनियों का विश्वास अमेरिकी मित्रों से उठ गया। इस कारण और भी कठिनाई हुयी। इससे पूर्व १९४५ ई० के अगस्त महीने में जब कि चीन अमेरिका के प्रेरणा से रूस से सन्धि कर चुका था; इसी महीने में मार्शल च्यांगकाई शेक ने पुनः अमेरिका के इशारे से साम्यवादी चीनी पार्टी से चुगकिंग समझौता किया। यह समझौता ४२ दिन तक टिका रहा। इसमें अमेरिकी राजदूत पैट्रिक जे० हरले का सहयोग था। इस बार

पुनः अमेरिकी नीति ने धोखा खाया। इस धोखे ने पूरे चीन को साम्यवादी बना दिया। अमेरिकी राजदूत पैट्रिक जे० हरले की गलतियों ने लोगहटन स्टुअर्ट के बिदाई को बाध्य किया। यह अत्यन्त चीनी लोकप्रिय अंतिम अमेरिकी राजदूत था। संयुक्त समझौता कराने की अमेरिकी भावना ने रूसी राजनीति को नहीं समझ सकी। उसका फल हुआ कि आज ६० करोड़ चीनी मात्सेतुंग के दर्शन में विश्व समस्या बने हुये हैं। अमेरिका की चीन के प्रति नीतियाँ अधिकांशतः अमेरिकी सेनापतियों द्वारा निर्धारित हुई थीं। उन सेनापतियों के दिमाग में गर्म युद्ध की जानकारियों के अलावा शीत-युद्ध का ज्ञान व बारीकियाँ थी ही नहीं। इसलिये वे समझौते असफल सिद्ध हुये। आज यथ्य यह है कि सोवियत संघ एवं जनवादी चीन तथा साम्यवादी राज्यों को छोड़ कर अमेरिका, अफ्रीका एवं यूरोप तथा एशिया के देशों की विदेश नीति का निर्धारण अधिकांशतः सेनाध्यक्षों द्वारा होता है। सोवियत संघ और चीन में पोलिटब्यूरो तय करता है कि सेना क्या करे। यद्यपि उक्त देशों मे सैनिक-शक्ति ज्यादातर केन्द्रित है। एशिया में सिर्फ भारत ही ऐसा देश है जहाँ पर नीतिमूलक तत्वों में सेना निर्णायक या प्रभावशाली हाथ नहीं है। श्री डलेसने लिखा है कि द्वितीय महायुद्धके पश्चात् अमेरिकी विदेश-विभाग के ऊपर राष्ट्रीय सुरक्षा-परिषद का प्रभाव बढ़ गया। इस राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद में ज्यादातर सैनिक ही सदस्य होते हैं। इसी कारण विश्व-जन मानस के खिलाफ भी अमेरिकी सरकार ने पनामा (लैटिन अमेरिका) जापान एवं कश्मीर इत्यादि में सैनिक अड्डा बनाया है। इस संदर्भ में ज्ञातव्य है कि सैनिक सलाहकार लड़ने के समय समझौता और समझौता के समय लड़ने का निर्णय किये हैं। कश्मीर घाटी में अमेरिकी सरकार ब्रिटिश सरकार के सहयोग से पुनः विभाजन की योजना गढ़ रही है। जिस प्रकार २८ अगस्त १९४५ ई० में मार्शल च्यांगकाईशेक

एवं मात्सेतुंग के बीच अमेरिकी प्रयत्न का सिद्धान्तहीन समझौता सिर्फ सामरिक दृष्टिकोण का था; उसी प्रकार भारत-पाक कश्मीर विषयक संभावित समझौता सामरिक दृष्टिकोण का ही होगा तथा स्वतः सिद्धान्तहीन होने की दशा में नये समस्याओं का सृजन करेगा। यह अमेरिका की सुदुरपूर्व की वैदेशिक नीति का दूसरा प्रमाण है। चुंगकिंग समझौता के बाद रावलपिंडी या नयी दिल्ली समझौता का स्थान है। वास्तव में इन प्रश्नों पर पूर्ण आदर्शात्मक राजनीतिक सिद्धान्तों की रचना एव उसका पालन होना चाहिये। अन्यथा; संप्रदायवादी एवं गलत ढंग के साम्यवादी के साथ संतुष्टि की नीति अपनाने से न तो कोई स्थायी सैनिक लाभ होता है और न तो मानवता का हो हित है। क्षणिक लाभ भले दिखलाई दे।

जिन चीनियों ने भारत से बौद्धधर्म की शिक्षा को प्राप्त किया; उन्हीं चीनियों ने भारत को तथाकथित साम्यवाद की शिक्षा देने का व्रत उठा रखा है। तथागत के बताये हुये मोक्ष के मार्ग को छोड़ कर चीन आजाद भारत को तथाकथित आजाद करना चाहता है। चीन भारत का संबंध हिमालय से ही बना। २५३ ई० पूर्व अशोक के समय से भारतीय शांति-दूतों ने चीन को बुद्ध का संदेश दिया। फाहियान नामक चीनी यात्री भी ५वीं सदी में भारत में अध्ययन के लिये ही आया था। ह्वेनसांग नामक दूसरा प्रसिद्ध ऐतिहासिक यात्री भारत में ७वीं शदी में ज्ञान पिपासा को शांत करने के लिये आया। भारत से जाने तथा अंदर आने के रास्ते हिमालय से ही सम्बन्धित थे। उस समय तीन रास्ते भारत होकर चीन जाते थे। पहला रास्ता अफगानिस्तान काबुल घाटी से तिआन शान होकर उच टरफान तक था। दूसरा रास्ता तुर्किस्तान और पामीर से होता हुआ काशगर से चीन तक जाता था। तीसरा रास्ता गिलगित से होता हुआ यासिन और काशगर तक जाता था। इन रास्तों से सैकड़ों भारतीय बौद्ध चीन गये थे। इनमें से बंगाल और कामरूप से ज्ञानभद्र, जिनयदास और

पश्चिमी भारत से जीवगुप्त गया। धर्मगुप्त ६१६ ई० में चीन में ही मर गया। इसी प्रकार ५२६ ई० में बोधिवर्मा ने वर्तमान नेफा के मार्ग से चीन तक यात्रा किया। बुद्धजीव नामक बौद्ध यात्री समुद्र के मार्ग से चीन तक यात्रा किया। इन यात्रियों के पहुँचने तक चीन में लगभग २०००० मठ और मंदिर बन चुके थे। चीन का दौत्य संबंध दक्षिण भारत के चालुक्य व पल्लव बादशाहों तक स्थापित हो चुका था। इसी क्रम में भारतीय विद्वानों ने तिब्बत में भी सांस्कृतिक प्रभाव कायम कर लिया था। इस में नालंदा विश्वविद्यालय का सहयोग था। हिमालय के प्रमुख एवं सर्वोच्च स्थान पर बसा हुआ तिब्बत भारतीयों एवं चीनी विद्वानों का संगम बन गया था। इसमें दुखद अध्याय भी हैं। नालंदाके विद्वान आचार्य कमलशील की निर्मम हत्या तिब्बतमें चीनियां ने किया था। उक्त हत्या का अभिप्राय यही था कि तिब्बत में भारतीय प्रभाव समाप्त हो जाये। अशोक महान् के पूर्व ऐसी ही घटना कश्मीर में घटी थी। कुमारजीव नामक एक विद्वान को चीनियों ने कश्मीर में से उठा लिया था और उसे बंदी बना कर चीन ले गये थे। उक्त विद्वान से अनुवाद का कार्य लिये। भारत का इतिहास चीन-भारत संबंधों के प्रमाणों से भरा पड़ा है। कश्मीर से कामरूप तक का हिमालय भारतीय एवं चीनी तथा तिब्बती यात्रियों को मार्ग प्रदान करता रहा। सांस्कृतिक संबंधों का विकास होता रहा। परन्तु, इतिहास के उन सुनहले दिनों में भी चीनियों ने विश्वासघात करने में तत्परता को ही प्रकट किया। आज का चीन प्राचीन चीन से कोटिशः खौफनाक है। क्योंकि वर्तमान के चीन को भारतीय शास्त्र की आवश्यकता नहीं है। वह सम्पूर्ण हिमालय को ही निगल जाना चाहता है। यह वास्तविक खतरा है। इससे, नेफा, भूटान, सिक्किम एवं बाराहोती तथा लद्दाख के भूभागों पर संकट आ गया है।

भारतीय जनता को आज हिमालय की रक्षा करनी है। अन्यथा, हिमालय शब्द ही संसार के वाङ्मय से गायब हो जायगा। चीनी

आक्रमण को विफल करने के लिये राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय अनुशासन एवं व्यापक आर्थिक समता संपन्न समाज का निर्माण करना होगा। अक्टूबर १९६२ ई० के चीनी आक्रमण के समय देश में अपूर्व एकता कायम हो गयी थी।

इसी प्रकार विदेशों से मित्रों की सहायता एवं सहानुभूति बड़ी शीघ्रता से प्राप्त हुयी। यह एक सशक्त एवं जाग्रत समाज का लक्षण है। क्योंकि प्रत्येक कार्य का प्रतिकार्य जिस शक्ति से किया जाता है उक्त कार्य की सफलता उसी पर निर्भर करती है। चीनी आक्रमण के उत्तर में जनता का जागरण एवं स्वतन्त्र रहने की उसकी अदम्य अभिलाषा तथा विश्व के स्वतन्त्र देशों की सक्रिय सहायता इस तथ्य का प्रमाण है कि चीनी जनभावनाओं को लांघ नहीं सकते हैं। भारतीय वीरों का बलिदान एवं शौर्य इस धरती की स्वतन्त्रता के लिये व्यर्थ नहीं जायेगा। परन्तु, इसके लिये भारतीय जन नायकों को देश के औद्योगिक प्रतिष्ठानों की रक्षा एवं संख्या में वृद्धि करनी होगी। उनको विकेन्द्रित स्थिति में रखने से आक्रमण के समय कम हानि की संभावना रहेगी। देश की खनिज एवं खाद्य उत्पादन क्षमता बढ़ानी होगी। नगरों की आबादी के बढ़ावको रोकना होगा। दस लाख आबादीसे ऊपरके नगर न बनने पायें। प्राविधिक अध्ययन को प्रोत्साहन देना चाहिये एवं जनता के जनजागरण को कायम रखना चाहिये। इन विषयों के अलावा सैनिक तैयारी में आदर्शवाद के कारण ढिलाई नहीं होनी चाहिये। युवकों को पर्वतारोहण एवं अर्ध सैनिक तथा रचनात्मक कार्यों का प्रशिक्षण देना चाहिये। भारत के संपूर्ण समाज को सशक्त बना कर गांधीवाद के आदर्श को उन्मुख करना चाहिये। क्योंकि सशक्त आदर्शोन्मुख समाज ही विश्व की वर्तमान स्थिति में जीवित रह सकता है। हिमालय अतीत में भी भारत का शिरोभाग रहा है और वर्तमान तथा भविष्य में भी रहेगा। इसके लिये सिर्फ भारतवासियों को गांधीवादी समाज का

निर्माण करना होगा एवं समाज को कल्पना से नहीं अपितु यथार्थ में मजबूत बनाना होगा ताकि भावी पीढ़ी को भटके हुये पथिक के समान हिमालय की खोज न करनी पड़े। क्योंकि भारत के ऊपर अब तक सशस्त्र सन्यासी सैनिकों का आक्रमण इतिहास में प्राप्त नहीं है। साम्यवादी चीनी एक तरफ मसीहा के रूप में हैं तथा दूसरे तरफ नाजियों के समान शस्त्रधारी हैं। ये सिर्फ हिमालय ही नहीं चाहते हैं। अपितु, सम्पूर्ण भारत एवं भारतवासियों के जीवन, जानकारी एवं संस्कृति के मूलोच्छेद में अपने ध्येय को केन्द्रित किये हैं। इससे पूर्व भारत के व्यक्तिशः नागरिकों पर कभी भी इतना वड़ा संकट संभावित नहीं था।

गाँधीजी ने दुनियां को शस्त्र संयास का रास्ता दिखलाया। अपने कर्म एवं आचारण से सिद्ध किया कि अहिंसा के द्वारा उपनिवेशों को मुक्ति प्राप्त हो सकती है। परन्तु इसके लिये कुछ

गांधी विचार एवं अनिवार्य मान्यताओं का पालन समाज एवं सत्या-

राष्ट्रीय सुरक्षा ग्रही को संयुक्त रूप से करना होगा। इसी लिए

गांधीजी ने १९२०, १९३० एवं अन्य अवसरों पर समाज के द्वारा हिंसा अपनाने जाने पर सत्याग्रहों को बन्द कर दिया था। गांधी के सहयोगियों को निराशा हो उठी थी। परन्तु गांधी अपने विचार पर दृढ़ रहे। साथ ही साथ सामूहिक अपराधों के प्रायश्चित स्वरूप आत्मशुद्धि के लिये अनशन भी करते जाते थे। संम्पूर्ण संसार के लिए यह एक कौतुहल बन गया था। पश्चिमी जगत में प्रश्न होना शुरू हुआ कि क्या गांधी का मार्ग यथार्थ में समाज द्वारा स्वीकृत हो सकता है? क्योंकि गांधी के सत्याग्रह प्रारम्भ होने के ही पूर्व रूस में महान् क्रांति हो चुकी थी। मनुष्यों का मसीहा मार्क्स गरीबों के पूर्ण विनाश में अपना विश्वास व घोषणा प्रगट कर चुका था। उसके अनुरूप लेनिन ने सोवियत संघ की स्थापना किया। गरीबों की आशा प्रबल हुयी। परन्तु हिंसा की ज्वाला मनुष्यों को आतंकित किये थी। ऐसा प्रतीत हुआ कि पूँजीवाद के स्वाभाविक अन्तरद्वन्द के समान इसमें अनिवार्य हिंसा का स्थान है। ऐसे समय में गांधी ने भारत में अहिंसा का प्रयोग प्रारम्भ किया। विपक्षी को सूचित करके एवं उसके साथ भ्रातृत्व रखते हुए उसके अन्याय से असहयोग करना गाँधीजी की नीति का मूल पाठ रहा है। इस नीति में सत्याग्रही को स्वयं कष्ट की हालत में रहना होता है। ज्ञातव्य है कि गांधी की इस नीति ने भारतीय स्वराज के प्राप्ति में महत्व पूर्ण हिस्सा अदा किया।

दुनिया के इतिहास में राज्य सत्ता का हस्तांतरण शांतिपूर्ण प्रस्तावों के माध्यम से हुआ नहीं था। यह मानवीय उपलब्धि का बेजोड़ मिसाल है।

स्वराज्य तो लगभग अहिंसा के माध्यम से प्राप्त हो गया। क्या राज्य भी शस्त्रहीनता की परिस्थिति में टिक सकेगा ? यह प्रश्न सामने आया। जो सिद्धान्त एक संगठन के लिए व्यवहार्य था, क्या राज्य के लिये शत प्रतिशत ग्राह्य है ? राज्य भी एक संगठन होता है परन्तु कई अर्थों में बहुत ही भिन्नता है। ब्रिटिश ताज के अन्तर्गत कांग्रेस की अहिंसा एक सामाजिक कर्तव्य के अनुरूप चल रही थी। क्योंकि इस समय के नियम एवं संविधान की भी मंसा यही थी कि नागरिक हिंसात्मक प्रयोग से विरत रहे। गांधी के बतलाये हुये मार्ग में कड़े वचन का भी प्रयोग अहिंसा की मर्यादा के विपरीत था। गांधी जी ने दक्षिणी अफ्रीका में भी ब्रिटिश सरकार के संविधान के अन्तर्गत रह कर ही आन्दोलन किया था। राज्य के स्थापित न्यायालयों द्वारा प्राप्त सजा व जुर्माने को सत्याग्रही भुगतता था खुशी के साथ-साथ। विध्वंसक तथा अन्य हिंसात्मक साधनों के देश प्रेमियों से गांधी वादियों का लगाव न था। संपूर्ण कार्य विपक्षी की जानकारी में अभय के साथ संपन्न होता था। गांधी जी विपक्षी के प्रतिफल को हृदय परिवर्तन एवं स्वयं के पक्ष को असहयोग एवं सत्याग्रह के रूप में रखते थे। समय कुसमय पर आन्दोलन को स्थगित कर देते थे। क्योंकि जनता संपूर्ण रूप से सेल्फ डिसिप्लिन एवं सत्याग्रह के लिये शिक्षित नहीं थी। इसलिये अहिंसा का रास्ता आ जाता था। हिंसात्मक आन्दोलन को सरकार कुचल देती थी और प्रगति कुंठित हो जाती थी। ऐसे अवसर पर गांधी जी शुद्ध सेनापति के रूप में कार्य करते थे। वे बढ़े हुये सत्याग्रह को स्थगित कर देते थे। ताकि उनके सत्याग्रहियों का रास्ता हिंसात्मक न हो जाये। दूसरे शब्दों में वे जन-

साधारण तक सत्याग्रह को पहुंचाने में प्रशिक्षण का रास्ता अपनाते थे। १६४० ई० के पश्चात् के सत्याग्रह में गांधी जी व्यक्तिगत निरिक्षण रखते थे। आचार्य विनोबा भावे को प्रथम उतीर्ण सत्याग्रही होने का श्रेय उसी समय प्राप्त हुआ था। व्यक्ति के अलावा गांधी जी क्षेत्रों का निरिक्षण करते थे। उसके बाद सत्याग्रह प्रारम्भ करने की अनुमति देते थे। यह वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक रास्ता था। अहिंसा अस्त्र प्रयोग के पूर्व की सावधानी थी। स्वयं महात्मा गांधी के प्रति श्री तेजबहादुर सप्रू ने लिखा है कि वे बुद्धि जागरण के कारण अहिंसा अस्त्र को अपनाये थे। इसका अर्थ हुआ कि वे व्यवहारिक परिस्थितियोंपर पैनी दृष्टि रखते थे। भावावेश एवं परंपरागत साधुतासे वे कार्य नहीं करते थे। इस कारण महात्मा गांधी के कार्यों में अध्यात्मिकता एवं व्यवहारिकता का समावेश था। जैसे सेनापति सेना की प्रगति को समझकर उसे बढ़ाता तथा घटाता है उसी प्रकार गांधी जी आन्दोलन को संचालित करते थे। जिस क्षण उन्हें विदित होता था कि जनता अहिंसा अस्त्र के ठीक प्रयोग में असमर्थ है उसी क्षण उसे बन्द कर देते थे और किन्हीं कुफलों के प्रायश्चित स्वरूप उपवास करते थे। सिर्फ यही अन्तर उनके में तथा सेना के कार्यविधि में था। गांधी का कार्य सूर्य की रोशनी के समान स्पष्ट था। प्रश्न उठता है कि गांधी ने राष्ट्र के लिये अहिंसा का मार्ग कैसे निर्धारित किया था? मुख्यरूप से गांधी ने १६१६ ई० में अमृतसर कांग्रेस में व्यक्तिगत तथा सामूहिक हिंसात्मक कार्यवाहियों का जो देश वासियों द्वारा किये जाते थे के खिलाफ निंदा का प्रस्ताव रखा। सम्पूर्ण अधिवेशन स्तब्ध हो गया। क्योंकि जलियानवाला हत्याकांड के मुकाबिले जनता के छिटपुट हिंसक कार्यवाही के विरोध का क्या तुक है? परन्तु, गांधी ने स्पष्ट घोषित किया कि उनके दृष्टि बिन्दु के समर्थन के अभाव में [illegible] अमृतसर कांग्रेस ने उनकी बातों को

स्वीकार किया। गांधी जी ने १९२२ ई० में अपने ऐतिहासिक मुकदमा के दौरान में बतलाया कि किस प्रकार १८९३ ई० में एक सरकारी सहयोगी के रूप से एक सरकारी विद्रोही तक वे पहुंचे हैं। परन्तु, गाधी ने अनुभव प्राप्त कर लिया था कि बुराई से बुराई का निराकरण संभव नहीं है। इसके साथ ही साथ जनता का जागरण एवं समग्र एकता प्राप्त होना अधिक आवश्यक है। इससे भारतवासी साम्राज्य में बराबरी का दर्जा प्राप्त कर सकते ऐसी गांधीजी की मान्यता थी। संभवतः गांधी जी के सामने पराधीन भारत के ऐतिहासिक पराजय का पूर्ण विश्लेषण चित्रित था। किस प्रकार अंग्रेज व्यापारियों ने भारतीय शासन तन्त्र को पलटकर अपना आधिपत्य जमा लिया था। हिन्दू राजाओं की आपसी फूट एवं हिन्दू मुसलमानों का संघर्ष और केन्द्रीय शक्ति की निर्बलता ने देश को गुलाम बना दिया। किस प्रकार लार्ड क्लाइव ने इलाहाबाद दरबार में १७६५ ई० में शाह आलम से दिवानी का हक प्राप्त कर लिया था। जब कि अंग्रेजों के लिये उसकी जरूरत नहीं थी। वह सिर्फ परंपरा की मान्यता थी। संधियों एवं अंग्रेजी कूटनीति ने भारत को ध्वस्त कर दिया। १८५७ ई० में शस्त्रबल से भारत के स्वाधीन होने की आशा समाप्त हो गयी थी। इस प्रकार भारत सदियों से निर्बल एवं निरस्त्र राष्ट्रके रूपमें बदल दिया गया था। हिंसात्मक कार्यवाही ब्रिटिश प्रतिरोध से दवा दी जाती तथा परम्परागत टूटे हुये समाजमें जागृति पैदा होने की संभावना समाप्त हो जाती। इसी लिये गांधी ने सत्य के प्रयोग को क्रमशः चलाया। परन्तु, परिस्थितियों ने गांधी के सिद्धान्तों का उलटा ही मूल्य प्रस्तुत किया। जितना ही अधिक हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास हुआ, प्रतिफल उतना ही विपरीत प्रगट हुआ।

यथार्थ में यह प्रतिफल गांधी जी के प्रयत्नों तथा सिद्धान्तों के किसी दोष के कारण नहीं था। परन्तु, जो कुछ हुआ वह इस

शताब्दी के प्रारम्भ की ऐतिहासिक सत्य के अनुरूप था। जड़ जगत का अन्तिम कण अणु टूट रहा था। उसका प्रतिफल मनुष्यों के सूक्ष्म मन पर पड़ना अवश्यमभावी था। प्रकृति व पुरुष के दूरगामी संबंधों को समझने से यह तथ्य बोधगम्य होगा। वह समय केन्द्र के वर्हिगमन का काल था। अब सभी राष्ट्र लगभग यह समझने लगे हैं कि अणु-युग तथा अंतरिक्ष युग संघबद्धता को प्रश्रय दे रहे हैं। क्योंकि इसके अभाव में विनाश निकट ही होगा। इस कारण आज संयुक्त यूरोप तथा संयुक्त अरब संघ व मलेशिया संघ बन रहे हैं। परन्तु १६२० ई० से १६४५ इ० तक समय ऐसा नहीं था।

उक्त विषम परिस्थितियों के कुफल के बावजूद गाँधी का नेतृत्व अद्वितीय ऐतिहासिक महत्व का था। गाँधी ने परंपरागत विश्वासों को नये अर्थ में खड़ा किया। भारत के पुराणकाल के विश्वासों को आधुनिक साँचे में ढाला। देश को सशक्त किया। जनता के विश्वास को प्राप्त करके जनता को जागृत किया। देश के दुर्बलतम अंगों के के लिए वैसा ही कार्य किया जैसे स्वतन्त्रता के लिए करते थे। इसी लिये 'हरिजन' पत्र की स्थापना एवं संपादन का कार्य उन्होंने स्वय किया। स्वतन्त्रता की भूख उन लोगों के भी मस्तिष्क में पैदा करने में सफल हुये जो सदियों से पेट की ज्वाला से झुलस रहे थे। क्योंकि क्षुधा पीड़ित मनुष्य के लिये स्वतन्त्रता कोई कीमत नहीं रखती है। देश में ऐसे लोगों का बाहुल्य था। गाँधी जी ने अपनी पद्धति से गरीबों के दिल व दिमाग में भी स्वतन्त्रता की भूख पैदाकर दिया था। उस समय के सत्याग्रही अधिकाँश रूप में ऐसे ही तबके के लोग थे। स्वतन्त्रता का आन्दोलन जन आंदोलन बन गया। जनता का समर्थन उन्हें प्राप्त हुआ। परन्तु, अहिंसा व सत्याग्रह इस पुरातन देश को अहिंसक व पूर्ण सत्याग्रही नहीं बना सके। देश के अन्दर जितने भी उपद्रव व दंगे हुये वे पुलिस तथा फौज की मदद से दबाये गये। गांधी

जी ने नोवाखाली तथा दिल्ली शहर के दंगे को अपने उपवास तथा नैतिक बल से दबाने में सफलता पाया था। फिर भी उक्त सफलता उनके अमूल्य जीवन के बलिदान को ही लेकर संतुष्ट हुयी। गांधी जी अपने जीवन काल में सत्य के प्रयोग को वैज्ञानिक ढंग से संचालित करने में सफल हो सके थे। यही कारण है कि अधिकांश असफलताओं के विपरीत उनकी उपलब्धियाँ बेजोड़ हैं। यह सभी जानते हैं कि विहार का दंगा तथा कलकत्ता इत्यादि स्थानों का दंगा सिर्फ फौज से दबाया जा सका था। इसी प्रकार आजाद हिंद फौज का भी गठन अहिंसा के आदर्श से नहीं हुआ था। इन पृष्टि भूमियों में यह आशा करना कि वर्तमान भारत सरकार अपनी सशस्त्र फौज का विघटन करके या उसे कम कर दे तो इससे बड़ी भूल अन्य नहीं होगी। क्योंकि आज भारत स्थिर स्वार्थियों तथा विश्वासघातियों से घिरा हुआ है। सशस्त्र सेना के विघटन का प्रयोग देश को गुलामी के गर्त में फेंक देगा। इसके अतिरिक्त जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है; भारतीय समाज अहिंसक समाज नहीं बन सका है। गाँधी जी सिर्फ कांग्रेस दल को अहिंसक घटक के रूप में सगठित कर सके थे। दल से समाज बड़ा होता है और समाज से बड़ा देश होता है। गाँधी जी के प्रयोगों को स्वयं उनके या उनके समान व्यक्ति के द्वारा तिगुनी शक्ति व समय के साथ करने में सफलता प्राप्त होगी। इस प्रकार अन्य परिस्थितियों के समान रहने पर भी अहिंसक समाज बनाने में ८० वर्ष के लगभग समय सापेक्ष है। इस प्रकार इतने समय तक निश्चय ही देश को शक्तिशाली एवं शस्त्रधारी रहना पड़ेगा। यदि प्रयत्नों में दोष न उत्पन्न हो सके तो इसके बाद ही देश शक्तिशाली एवं अहिंसक समाज के रूप में खड़ा हो सकेगा और किसी भी अनाचार एवं आक्रमण का मुकाबिला गांधीवादी रास्ते से दे सकेगा।

इस प्रसंग में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अब कांग्रेस दल भी अहिं-

शक नहीं रह गया। कम से कम उस अर्थ में जिस अर्थ में गांधीजी चाहते थे। यह एक नया संकट है। आज भारत में न तो अहिंसक दल है और न तोसमाज ही है। यदि अहिंसक संस्था कोई है तो सर्वोदय समाज। परन्तु, इसके पीछे अभी जनता का समर्थन बहुत ही स्वल्प है। यह देश का दुर्भाग्य है कि गुलाम भारत में कम से कम कांग्रेस जैसी अहिंसक संस्था थी जिसे जनता का प्यार एवं समर्थन प्राप्त था; परन्तु आज देश में सिर्फ इक्के दुक्के अहिंसक व्यक्ति हैं। ऐसी हालत में अहिंसा के माध्यम से देश की रक्षा करने का मार्ग मृग-तृष्णा ही है। यद्यपि गांधीजी अपने जीवन काल में ही हरिजन तथा यंग इण्डिया में अपने विचार प्रकट कर चुके थे। गांधीजी के अनुसार स्वतन्त्र भारत को सशस्त्र सेनाओं की आवश्यकता नहीं होगी। विध्वंसक औजारों के सामने सत्याग्रही को बिना द्वेष के साथ सामना करना चाहिये। जून १९६२ ई० में भूतपूर्व राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ने भी भारत को यह सलाह दिया कि उसे अपनी सशस्त्र सेनाओं को एक तरफा भंग कर देना चाहिये। परन्तु, गांधीजी भी अपनी उस वक्त की सलाह को पूर्ण चिंतन के पश्चात् नहीं प्रगट किया था। क्योंकि १९४६ ई० में गांधीजी पूर्णतः राष्ट्रीय समस्याओं से घिरे थे। उनको अवसर ही प्राप्त नहीं हो सका था जिससे वे अपने सत्य के प्रयोग को इस प्रश्न पर रख सकते। अतः बिना प्रयोग के पश्चात् का मत समग्र रूप से उपयोगी नहीं है। गांधी के पश्चात् उनके अनुयाइयों ने दो धारा में काम किया तथा कर रहे हैं। एक वर्ग अन्तोदय तथा सर्वोदय के कार्यक्रम द्वारा आर्थिक निर्माण एवं ग्राम्य राज्य की स्थापना के प्रयास में पड़ा है। दूसरा वर्ग सरकार में घुसा है या उसमें घुसना चाहता है। इस प्रकार सरकारी उद्देश्य व सर्वोदयी उद्देश्य एकजुट नहीं हो सके हैं। इस कारण गांधी का दर्शन दुर्बल परिस्थिति में पड़ गया है। मार्च १९५३ ई० में श्री जयप्रकाश नारायन ने प्रधान मन्त्री

शक नहीं रह गया। कम से कम उस अर्थ में जिस अर्थ में गांधीजी चाहते थे। यह एक नया संकट है। आज भारत में न तो अहिंसक दल है और न तो समाज ही है। यदि अहिंसक संस्था कोई है तो सर्वोदय समाज। परन्तु, इसके पीछे अभी जनता का समर्थन बहुत ही स्वल्प है। यह देश का दुर्भाग्य है कि गुलाम भारत में कम से कम कांग्रेस जैसी अहिंसक संस्था थी जिसे जनता का प्यार एवं समर्थन प्राप्त था; परन्तु आज देश में सिर्फ इक्के दुक्के अहिंसक व्यक्ति हैं। ऐसी हालत में अहिंसा के माध्यम से देश की रक्षा करने का मार्ग मृग-तृष्णा ही है। यद्यपि गांधीजी अपने जीवन काल में ही हरिजन तथा यंग इण्डिया में अपने विचार प्रकट कर चुके थे। गांधीजी के अनुसार स्वतन्त्र भारत को सशस्त्र सेनाओं की आवश्यकता नहीं होगी। विध्वंसक औजारों के सामने सत्याग्रही को बिना द्वेष के साथ सामना करना चाहिये। जून १९६२ ई० में भूतपूर्व राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ने भी भारत को यह सलाह दिया कि उसे अपनी सशस्त्र सेनाओं को एक तरफा भंग कर देना चाहिये। परन्तु, गांधीजी भी अपनी उस वक्त की सलाह को पूर्ण चिंतन के पश्चात् नहीं प्रगट किया था। क्योंकि १९४६ ई० में गांधीजी पूर्णतः राष्ट्रीय समस्याओं से घिरे थे। उनको अवसर ही प्राप्त नहीं हो सका था जिससे वे अपने सत्य के प्रयोग को इस प्रश्न पर रख सकते। अतः बिना प्रयोग के पश्चात् का मत समग्र रूप से उपयोगी नहीं है। गांधी के पश्चात् उनके अनुयाइयों ने दो धारा में काम किया तथा कर रहे हैं। एक वर्ग अन्तोदय तथा सर्वोदय के कार्यक्रम द्वारा आर्थिक निर्माण एवं ग्राम्य राज्य की स्थापना के प्रयास में पड़ा है। दूसरा वर्ग सरकार में घुसा है या उसमें घुसना चाहता है। इस प्रकार सरकारी उद्देश्य व सर्वोदयी उद्देश्य एकजुट नहीं हो सके हैं। इस कारण गांधी का दर्शन दुर्बल परिस्थिति में पड़ गया है। मार्च १९५३ ई० में श्री जयप्रकाश नारायन ने प्रधान मन्त्री श्री नेहरू को स्पष्टतः बता दिया था कि यदि देश में विकेन्द्रित अर्थ

व्यवस्था तथा स्वच्छ एवं सही प्रशासन और यथार्थ सामाजिक न्यायदान नहीं कायम किया गया तो एशिया व अफ्रीका चीन के हवाले समर्पित हो जायगें। श्री नरायन के अनुसार पश्चिमी सांचे का कल्याणकारी राज्य इस स्थिति को नहीं संभाल सकता है। आज वही चेतावनी प्रत्यक्ष खड़ी है। ११ अक्टूबर १९५१ ई० को डा० बी० आर० अम्बेदकर ने भी चीनी खतरे को संसद के समक्ष अपने मंत्रीपद त्याग वाले बयान में प्रगट किया था। श्री जे० बी० कृपलानी श्री एस० बी० कामत एवं डा० राममनोहर लोहिया ने भी आसन्न संकट का पूर्वाभास दिया था। परन्तु, संकट टाला नहीं जा सका।

भारत ने अपनी विदेश नीति में गांधीवाद को जीवित रखा। सैनिक गुटों से अलगाव तथा विश्वशांति में योगदान जैसे विश्व एवं मानव हित के कार्य किये गये। यही कारण है कि चीनी आक्रमण के समय संसार के अधिकांश देशों की सहायता एवं सहानुभूति भारत को प्राप्त हुयी। यह भारत की नीतियों का समर्थन जहां पर उन देशों द्वारा था इसी स्थल पर चीन की मूल पद्धति से उदासीनता भी इन देशों में थी एवं है। इसी प्रकार देश के भीतर जनता ने जो अपूर्व सहयोग दिया, वह राष्ट्र प्रेम का ही परिणाम है। इस प्रकार स्पष्ट है कि देश के भीतर गांधी के सिद्धान्तों का निर्माण नहीं हो सका है। साम्यवाद के शास्त्र का अंतिम उद्देश गांधीवाद के अलावा अन्य नहीं है। राज्य के विलुप्त हो जाने की उनकी मान्यता एवं घोषणा से जनता को अकल्पनीय उत्साह प्राप्त होता है। साम्यवादी शासन के अन्तर्गत वर्तमान पीढ़ी अपने कठिन परिश्रमों को भविष्य की आशा के कारण भूल जाती है। इसके अलावा साम्यवादी जनता की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार उनका आन्दोलन व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुंच जाता है। साम्यवाद के विपरीत पश्चिमी देशों का आदर्श प्रभावशाली एवं आकर्षण वाला नहीं हो पाता है। इस तथ्य को अमेरिका के भूतपूर्व विदेश सचिव श्री डलेस भी स्वीकार कर

चुके हैं। "नियम का राज्य" एवं "स्वतन्त्र समाज" का उद्घोष बहुत अर्थ नहीं रख पा रहा है। पूँजीवाद व सैनिकवाद साम्यवाद के बढ़ाव को रोक नहीं सकता है। गांधी की अहिंसा, विकेन्द्रीकरण एवं ट्रस्टीशिप या विश्वस्त वृत्ति की विचार धारा ही साम्यवाद का सही उत्तर है। परन्तु, इसके लिये विश्व के संम्पूर्ण मित्र देशों को एकबद्ध प्रयास करना होगा। निःसंदेह सम्पूर्ण संसार भारत के तरफ इस मार्ग दर्शन के लिये आशा के साथ आंखें फैलाये है। भारत सरकार, भारतीय जनता एवं मुख्यरूप से सर्वोदयी समाज को भगीरथ प्रयास करना होगा। भारतीय नवयुवकों को विशेष रूप से प्रशिक्षित करना होगा। क्योंकि आज भारत के नवयुवक एवं नवयुवतियाँ ऋषि मारकण्डे के समान साम्यवादी साहित्य के समुद्र में डूब रहे हैं। ऐसा आचार्य विनोबा भावे भी मानते हैं। परन्तु, सर्वोदय आंदोलन या समाज में युवक प्रशिक्षण का कोई कार्यक्रम ही नहीं है। इसके विपरीत सर्वोदय आन्दोलन चन्द उच्च विचार के व्यक्तियों का उदासीन मन्त्र है। देश के जनमानस को गढ़ने के लिये प्रबल प्रयत्न की आवश्यकता है। मुख्य रूप से साम्यवादी विचार के संदर्भ में बहुत व्यावहारिक कदम की आवश्यकता है। संस्थागत बहस एवं विचार शुद्धि का दुर्बल प्रयत्न समय के बढ़ाव के अनुरूप नहीं है। गांधी जी के पिछले कार्यों के ही अनुरूप नकल करके संकट के समय भाष्य प्रस्तुत करने से काम नहीं चलेगा। गांधी जी की दांड़ी यात्रा के अनुरूप दिल्ली-पेकिंग शांति यात्रा ऐसे ही विचार की उपज है। स्पष्टतः समझ लेना चाहिये कि गांधी की दांडी यात्रा के पीछे सम्पूर्ण राष्ट्र का उसी अर्थ में सहयोग था। परन्तु, इस यात्रा में यह प्रसंग नहीं है। यात्री दल अपनी मनोदशा से यात्रा करेगा एवं भारतीय सेना अपनी मनोदशा से संकट का मुकाबिला करेगी। डा० संपूर्णानन्दजी ने लिखा है कि अंग्रेजों के आने के पूर्व देश में खादी ही थी। परन्तु, गुलामी आ ही गयी। परन्तु गांधी के खादी से स्वतन्त्रता आ गयी। अन्तर स्पष्ट है। अंग्रेजों

से पूर्व की खादी सार्वदेशिक थी, परन्तु उसमें देशके प्रति प्रेम का भाव नहीं था। । शुद्ध उपभोग की वस्तु थी । गांधी की खादी में उपयोगिता के अलावा राष्ट्रप्रेम मूर्तरूप से था । इस कारण इसका फल स्वतन्त्रता प्राप्ति के रूप में हुआ । आज विश्व-शांति सेना विभिन्न देशों के विचारकों की एक अत्यन्त ढीली-ढाली संस्था है । संस्था अति उत्तम है । आदर्श महान है । परन्तु, जिस प्रकार कांग्रेस संस्था का मुकाबिला विश्व की महान ताकत ब्रिटेन से हुआ था, उसी प्रकार आज विश्व सेना का मुकाबिला ऐसे संगठन व शक्ति से है जैसा कि कभी इस धरती पर हुआ ही नहीं था । इसके अलावा साम्यवादी देशों के अतिरिक्त अन्य जगहों में महानतम् असंगतियाँ हैं । प्रतिक्षण पशुता का प्रतीक नाखून बढ़ रहा है । निःशस्त्रीकरण संभव प्रतीत नहीं हो रहा है । बुरे को नेकनीयतीवश भी बुरा कहने का साहस समाज खो चुका है । ऐसे कठिन समय में भारत को विश्व के सामने अपने आदर्श एवं अस्तित्व की रक्षा के लिये संघर्ष करना पड़ रहा है । अणु अस्त्रों के निर्माण का निषेधात्मक निर्णय भारतीय नीति के अनुरूप है । परन्तु, अपने महान् आदर्श व जीवन प्रणाली की रक्षा के लिये नाटकीय अनुभव काम नहीं दे पायेंगे । भारतीय राष्ट्र को पंचायती समाज की स्थापना का लक्ष्य समय के साथ घोषित कर देना चाहिये । भारी उद्योगों की स्थापना के पश्चात् ही कुटीर उद्योग-धंधों का विकास प्रथम प्राथमिकता के साथ करना होगा । अहिंसक समाज की स्थापना सातत योग के साथ धीरे-धीरे करना होगा । देश के अन्दर आज शस्त्र एवं शास्त्र के दुतरफे निर्माण की आवश्यकता है । यह संक्रमण काल की अनिवार्य माँग है । इसमें किसी किस्म की झिझक कच्चेपन की अवस्था होगी । आज सारे संसार को ज्ञात हो जाना चाहिये कि भारत डर के कारण साम्यवादी कलमा को नहीं पढ़ेगा । गांधीजीने ६-१०-४६ को 'हरिजन' में अपने विचार को प्रगट किया था । उसी के अनुसरण की आवश्यकता है ।